डॉ. अम्बेडकर और कश्मीर समस्या

धनराज डाहाट

डॉ० अम्बेडकर और कश्मीर समस्या

डॉ॰ अम्बेडकर
और
कश्मीर समस्या

लेखक

धनराज डाहाट

अनुवादक

मोहनदास नैमिशराय

गौतम बुक सेन्टर

दिल्ली

ISBN : 978-81-87733-76-8

गौतम बुक सेन्टर

'चन्दन सदन' सी-263-ए, गली नं.-9,
हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093
फोन-22810380, 65822074

प्रथम आवृत्ति : 2009

मूल्य : 50.00
250.00

मुखपृष्ठ : अनिल कुमार,
डायरेक्टर, दलित साहित्य रिसर्च फाउंडेशन, दिल्ली

शब्दांकन : अनुज कंप्यूटर्स, दिल्ली

बालाजी ऑफसेट, प्रिंटर्स दिल्ली द्वारा मुद्रित

कश्मीर की मुक्ति के लिए
शहीद हुए
महार बटालियन के
ज्ञात-अज्ञात बहादुर
सैनिकों के सम्मान में...

भूमिका

कश्मीर के सवाल पर विश्व रत्न डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के क्रान्तिकारी विचारों को इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सवालों के गहन मंथन और कृतिशील कार्यक्रमों की प्रक्रिया से पैदा हुआ है। उनके उस दर्शन को राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि थी और उनकी धड़कन भी राष्ट्रीय मूल्यों पर आधारित थी। उनके इस दर्शन का हर कदम कभी भी संकुचित स्वार्थ से प्रेरित नहीं था। उनके दर्शन की उड़ान आकाश को छूने वाली थी; फिर भी उनकी निष्ठा जमीन से जुड़ी थी। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने इस भूमि को पुनः खुशहाल बनाने के लिए क्रान्ति की ज्योति जलाई, जिससे अज्ञानी भारतवासियों को ज्ञान के प्रकाश का रास्ता मिला। उनके विचारों की महत्ता को जानकर ही मैंने 'डॉ. अम्बेडकर और कश्मीर-समस्या' नाम से इस पुस्तक की रचना की।

डॉ. अम्बेडकर के आंदोलन में कश्मीर का सवाल एक बहुत ही गंभीर सवाल था। इस सवाल के लिए ही डॉ. अम्बेडकर ने विधि मंत्री पद से अपना इस्तीफा दे दिया था। इसी सवाल पर डॉ. अम्बेडकर ने 1952 में पहला आम चुनाव लड़ा था और सत्ताधारी काँग्रेस के साथ कड़ा मुकाबला किया था। उन्होंने अपने चुनावी घोषणापत्र में इस सवाल को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया था। इस सवाल को हल करने के लिए सरकार के सामने उन्होंने कई महत्वपूर्ण सुझाव रखे थे। इस सवाल पर उन्होंने चीन और पाकिस्तान की नीतियों की धज्जियाँ उड़ाई थीं। और उन्होंने उसी तरह भारतीय राष्ट्रीय नेताओं को गुमराह करनेवाली विदेश-नीति पर भी हमला किया था। उन्होंने 'कश्मीर के सवाल के संदर्भ में देशहित के सामने कोई भी बड़ा नहीं है', इस नीति को महत्वपूर्ण माना था।

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर को कश्मीर का सवाल कई दृष्टि से महत्वपूर्ण लग रहा था। इसलिए उन्होंने जहाँ जरूरी हो, वहाँ इसकी चर्चा की है। डॉ. अम्बेडकर ने भारत के विभाजन के संदर्भ में ग्रन्थ लिखकर जो दिशा-निर्देश किया है, उस तरह का प्रयास उन्होंने कश्मीर के संदर्भ में नहीं किया। शायद उनको उसकी जरूरत महसूस न हुई हो। चूँकि विभाजन का अंतिम स्वरूप कश्मीर के सवाल में निहित है।

कश्मीर के सवाल पर जब मैं 'अम्बेडकरवादी-दृष्टि' से सोचता हूँ तब मुझे बहुत सारी नई बातें मिलती हैं। कश्मीर के संदर्भ में महार बटालियन का पराक्रम, रजवाडों और रियासतों के सवाल पर डॉ. अम्बेडकर की भूमिका, डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति, राष्ट्र की संकल्पना, लद्दाख के बौद्धों का सवाल आदि समस्याओं पर

सोच-विचार करके उनकी एक सूत्रमाला तैयार की जाए और "डॉ. अम्बेडकर और कश्मीर-समस्या" नाम की किताब लिखी जानी चाहिए। इस तरह का विचार मेरे मन में काफी दिनों से उठ रहा था। इन वर्षों में कश्मीर के सवाल पर देश के पत्र-पत्रिकाओं में जितना मंथन हुआ, उतना शायद पहले कभी नहीं हुआ है।

बार-बार यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि कश्मीर का सवाल सिर्फ मुस्लिम और हिंदुओं के बीच के संघर्ष का सवाल है। परंतु कश्मीर के सवाल में एक तीसरी शक्ति का भी अस्तित्व है। इस सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक कभी कोई विचार नहीं हुआ है। यह तीसरी शक्ति है लद्दाख के बौद्ध। मैंने इस किताब में यह प्रयास किया है कि कश्मीर के सवाल के संदर्भ में लद्दाख बौद्धों की मुक्ति का सवाल महत्वपूर्ण है। फिलहाल कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए जो सुझाव दिए जाते हैं, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण सुझावों की चर्चा करने का प्रयास मैंने इस किताब में किया है। यह किताब कश्मीर का सवाल कैसे हल किया जाए, उसकी मार्गदर्शिका नहीं है, बल्कि अम्बेडकरवादी चेतना से कश्मीर के सवाल को पाठकों के सामने रखा जाए और उस पर निर्णय लेने के लिए उनको मदद मिले, इसलिए मेरा यह प्रयास है। इस किताब में कश्मीर के सवाल की हर तरह की चर्चा करते हुए मैंने अपना दृष्टिकोण भी पाठकों तक पहुँचाया है। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने 'पाकिस्तान ऑर द पार्टिशन ऑफ इंडिया' इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में अपनी भूमिका इस प्रकार रखी थी–

"पाठकों के सामने यह महत्वपूर्ण और सम्बन्धित सामग्री रखने का उद्देश्य यही है कि मैंने उन पर अपने विचार लादे नहीं हैं। मैंने उन तक दोनों पक्ष के विचार पहुँचाएँ हैं और उन्हें स्वयं अपना विचार बनाने के लिए तैयार किया है।"

(डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, खंड 8, पृष्ठ 18) यह विचार आज भी मुझे मान्य हैं। इस पर पाठकों ने स्वयं निर्णय लेना चाहिए। इस दृष्टि से उनकी भी प्रतिक्रिया अपेक्षित है।

इस पुस्तक को तैयार करने में बहुत-से साथियों से सहयोग मिला। मैं उन सभी का आभारी हूँ। मेरी पत्नी नलिनी, बेटा राजप्रिय और बेटी प्रियंका इनकी भी बड़ी मदद मिली है। इन सबके सहयोग मिलने के कारण ही इस पुस्तक को छपवाने को हिम्मत मैं कर पाया हूँ।

कश्मीर का सवाल आजाद भारत में 47 वर्षों से चर्चा में है। इस विषय पर बहुत-सी पुस्तकें उपलब्ध हैं। लेकिन मैंने उन सबके विवादों में न पड़कर केवल डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के कश्मीर से संबंधित विचारों का ही अध्ययन करने का प्रयास किया है। मुझे उम्मीद है कि यह पुस्तक अवश्य ही पाठकों को पसंद आएगी।

अनुवादक की ओर से...

कहा जाता है कि एक समस्या से हजार समस्याएँ अपने-आप बन जाती हैं। कश्मीर-समस्या का भी वही हाल है, जिसका समाधान अभी तक नहीं हो पाया है और जो भारत-पाकिस्तान के बीच शत्रुता का कारण बनी हुई है। दोनों देशों के बीच तीन युद्ध इसी कश्मीर के कारण हो चुके हैं। दोनों देश कश्मीर पर अपनी-अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए कहीं अधिक रक्षा बजट का प्रावधान रखते हैं। दोनों देशों की विदेश-नीति भी इसी कारण प्रभावित हुई है।

10 अक्तूबर, 1951 को बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने विधिमंत्री के पद से त्यागपत्र देने के बाद अपने वक्तव्य में कहा था, "कश्मीर-समस्या का सही समाधान यह है कि राज्य का विभाजन कर दिया जाए, जैसे कि हमने हिंदुस्तान के सम्बन्ध में किया है। हिंदू व बौद्ध आबादी वाला भाग भारत को और मुसलमान आबादी वाला भाग पाकिस्तान को दे दिया जाए।"

उन दिनों बाबा साहेब के इस वक्तव्य पर बहुत शोर हुआ था। अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की गई थीं। तब से लेकर अब तक बहुत समय इसी तरह की प्रतिक्रियाओं तथा विकारों से उपजे विनाश के बादल दोनों देशों पर मंडराते रहे तथा भारत और पाकिस्तान के एक राष्ट्र परिवार जैसे नागरिकों को दहशत में रहते-रहते बहुत समय बीत गया है।

अभी पिछले दिनों मियाँ नवाज शरीफ के प्रधानमंत्री बन जाने पर उनके द्वारा प्रस्तुत 'कश्मीर सहित सभी विवादित प्रश्नों पर बातचीत' का प्रस्ताव करना, शांति-समझौते के सम्बन्ध में अच्छी पहल है। साथ ही, पूर्व प्रधानमंत्री देवगौड़ा द्वारा विदेश मंत्री स्तर पर वार्ता के प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद दोनों देशों के बीच उच्चस्तरीय वार्ता आरंभ होने की संभावनाएँ तो निश्चय ही बढ़ गई हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का इतिहास भी बताता है कि स्थितियाँ अनुकूल हो तो कठिनतम समस्याएँ भी सुलझ जाती हैं। आज से कुछ वर्ष पहले तक किसे उम्मीद थी कि अपने सारे ऐतिहासिक बैर-भाव भूलकर फ्रांस और जर्मनी आज संयुक्त यूरोप का नेतृत्व कर रहे होंगे और दस वर्ष पूर्व तक भी कौन आशा कर सकता था कि फिलिस्तीनी और इस्राइली एक ही देश में रहकर बातचीत द्वारा अपनी समस्याएँ सुलझा लेंगे! इस तरह का मैत्रीभाव होने के और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। तब स्थितियाँ अनुकूल होने पर भारत-पाक सम्बन्ध भी सुधर सकते हैं और यह उपमहाद्वीप भी यूरोप की तरह एकता और विकास की ओर बढ़ सकता है।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पाकिस्तान के अब तक के सबसे करीबी मित्र देश अमरीका और चीन, दोनों ही इस पर बल दे रहे हैं कि वह भारत से अपने सम्बन्ध सुधारने के प्रयास करे। चीनी राष्ट्रपति जियांग ने अपनी यात्रा में इस क्षेत्र में शांति को रेखांकित किया था। राष्ट्रपति क्लिंटन भी अब दक्षिण एशिया को पहले से अधिक महत्व दे रहे हैं। उनकी भूतपूर्व उपविदेश सचिव रॉबिन रैफेल भी अपनी पुरानी नीतियों को छोड़ कश्मीर के सवाल के सीधी बातचीत द्वारा समाधान पर बल दे रही हैं। पाकिस्तान यदि 'शिमला समझौते' पर अमल करता तो अब तक कश्मीर की समस्या कब की हल हो चुकी होती। सबसे अच्छी बात यह हुई है कि कल तक विदेश मंत्री के रूप में मैत्री और प्यार बाँटने के पवित्र और महत्वपूर्ण प्रयास में प्रतिबद्ध गुजराल जी देश के प्रधानमंत्री बन गए। हमें उम्मीद हुई कि वे अवश्य ही कुछ करेंगे।

जहाँ तक 'डॉ. आम्बेडकर आणि काश्मीर समस्या' को हिंदी में अनुवाद करने की बात है, इस बारे में पिछले दो वर्षों से मन में इच्छा थी। पर मैं मराठी भाषा नहीं जानता था। खैर बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के संपूर्ण साहित्य को पढ़ने की लालसा से और कुछ साथियों की प्रेरणा से मैंने मराठी भाषा सीखना आरंभ कर दिया। माननीय जोगेंद्र कवाडे जैसे वरिष्ठ और क्रांतिकारी साथी से और भी बल मिला। फिर धनराज डाहाट जी ने इस विषय पर जो मेहनत की थी, उसे हिंदी के पाठकों को परिचित कराने की जिम्मेदारी भी मैं महसूस कर रहा था। इस अनुवाद के पीछे एक बड़ा कारण और था; और वह यह कि जब-कभी उत्तर भारत, विशेष तौर पर देश की राजधानी से प्रकाशित समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कश्मीर-समस्या पर बुद्धिजीवियों के बीच बहस छिड़ती थी तो वे बाबा साहेब के कश्मीर-समस्या पर दिए गए विचार तथा वक्तव्यों को नजरअंदाज करते रहे थे। इसके दो विशेष कारण रहे। पहला संपादक तथा पत्रकारों को बाबा साहेब के कश्मीर समस्या से संबंधित विचारों के बारे में जानकारी भी नहीं थी। दूसरे, वैसे बुद्धिजीवी 'सवर्ण मानसिकता' से प्रभावित भी रहे हैं। इसलिए बाबा साहेब के विचार को राष्ट्रीय हित हेतु ध्यान में रखते हुए तथा कश्मीर-समस्या और उसके समाधान के लिए सुझाए गए रास्तों से समूचे हिंदी पाठकों को परिचित कराने के लिए मैंने मराठी भाषा सीखने तथा इस पुस्तक का अनुवाद करने का कार्य शुरू किया। दोनों कार्य एक साथ चलते रहे।

इस कार्य में सर्वप्रथम तो स्वयं धनराज डाहाट ने ही मदद की। फिर शेखर पवार, रंजना, प्रो. विमल कीर्ति, कौशल्या बेसंत्री, ठाकरे आदि ने भी समय-समय पर अनुवाद-कार्य में सहयोग दिया। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। आशा है, अगर इसी तरह का आगे भी सहयोग मिलता रहा तो मराठी में प्रकाशित कुछ और महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद कर पाऊँगा।

नई दिल्ली, 3 अक्तूबर, 1997 **मोहनदास नैमिशराय**

अनुक्रम

- भूमिका 7
- अनुवादक की ओर से... 9
- डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र संकल्पना और कश्मीर 13
- कश्मीर के निर्माण की मानसिकता 22
- भारतीय रियासतें और कश्मीर 32
- कश्मीर मुक्ति और महार बटालियन 39
- विदेश नीति और कश्मीर समस्या 47
- डॉ. अम्बेडकर की विदेश नीति 61
- संयुक्त राष्ट्र संघ और कश्मीर का सवाल 71
- भारतीय संविधान की धारा 370 79
- कश्मीर के सवाल पर बौद्धों की भूमिका 91
- कश्मीर का सवाल : परिणाम और समाधान 100
- संदर्भ साहित्य 110

अध्याय 1

डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र-संकल्पना और कश्मीर

> *राष्ट्रीयता से राष्ट्रवाद होने के लिए दो स्थितियों का होना जरूरी है। प्रथम, राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा का होना जरूरी है। राष्ट्रवाद उस इच्छा का एक आकर्षक कथन है। दूसरे, एक भूमि का टुकड़ा होना जरूरी है, जिस पर किसी का कब्जा हो या अधिकार-क्षेत्र में हो, जिससे राज्य बनाया जा सके। साथ ही राष्ट्र की एक विशेष संस्कृति भी हो।*[1]
>
> **-डॉ. बी. आर. अम्बेडकर**

(डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, खण्ड 8, पृ.-39)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर स्वयं 'मानवीय कल्याण के विचारों के महाग्रंथ' ही हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के राजनीतिज्ञ थे। भारत की आजादी का इतिहास कुछ इने-गिने लोगों को ही सामने रखकर लिखा गया और डॉ. अम्बेडकर का व्यक्तित्व उसमें राष्ट्रद्रोही के रूप में चित्रित किया गया। इसलिए लगता है कि उनके राजनैतिक विचारों को कई लोगों ने नजरंदाज किया है। कुछ लोग डॉ. अम्बेडकर को केवल एक समाज सुधारक मानते हैं। यदि हम डॉ. अम्बेडकर के जीवन, कार्य और उनके दर्शन पर निरपेक्ष दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो उनके राजनीतिक लक्ष्य, विचार-दर्शन का विश्वात्मक दर्जा इतिहास को भी मान्य करना होगा।

डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक विचार राष्ट्रीय तत्वों से ओतप्रोत हैं। उसमें कहीं भी संकुचित विचारों को स्थान नहीं है। प्रत्येक सवाल का विचार उन्होंने वैश्विक स्तर और राष्ट्रीय मूल्यों के संदर्भ में ही किया है। उनकी विचारभूमि भी राष्ट्रीय ही है। राष्ट्र के परिक्षेत्र में ही उनके प्रत्येक विचार की निर्मिती हुई है। फिर वह विचार चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या राजनैतिक रहा हो। प्रत्येक विचार का रंग उनकी राष्ट्रीय सोच में परिलक्षित होता है। उनके राजनैतिक विचारों पर दुनिया के प्रसिद्ध लोगों जैसे-जॉन लॉक, जेफरसन, जान डिवे, एडमंड बर्क और पश्चिमी

उदारवादी विचार के राजनैतिकों व सामाजिक सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा। फिर भी उन्होंने अपनी प्रज्ञा शक्ति से इन विचारों के रसायन से अपने स्वतंत्र राजनैतिक विचारों की निर्मिती की है, यह भी उतना ही सच है। इसलिए उनका राजनैतिक-दर्शन इस देश की राजनीति में सक्षम स्वरूप का हुआ है।

डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र-संकल्पना

डॉ. अम्बेडकर की राजनीति राष्ट्र-संकल्पना का मौलिक आधार है। सिडने ब्रुक्स, नॉर्मन एंजिल या रॉबर्टसन आदि ने राष्ट्रवाद को मानवीय शत्रु कहा है लेकिन उनका वैसा समर्थन बाबा साहेब ने नहीं किया है। फिर भी उन्होंने मानव कल्याण के लिए राष्ट्रवाद को उपयुक्त शक्ति होने की मान्यता दी है। धर्मान्धता पर आधारित हिंदू या मुस्लिम राष्ट्रवाद उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी उनको मान्य नहीं था। ऐसे धर्मान्ध और साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद को उन्होंने स्पष्ट नकारा है। राजनैतिक विचारों के आधार से उन्होंने राष्ट्रवाद के लिए दो बातों का प्रतिपादन किया है-

1. राष्ट्रवाद के लिए मौलिक आधार सामाजिक एकता की भावना होनी चाहिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्रवाद का आधार मानवीय प्रगति और मानवीय कल्याण होना चाहिए।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने जिस राष्ट्रवाद का प्रतिपादन किया है, वैसा राष्ट्रवाद धर्मांध शक्ति को स्पष्ट नकार देने वाला है और सामाजिक तथा मानवीय कल्याण का उपकारक तथा मौलिक सिद्धान्त है।

राष्ट्र के रूप में एकता की इच्छा तथा एक निश्चित सांस्कृतिक और राज्य निर्माण की दृढ़ प्रतिज्ञा—यही राष्ट्रवाद का सार है। किसी भी राष्ट्र के लोगों की आंतरिक एकता को ही राष्ट्रवाद कहना चाहिए, ऐसा बाबा साहेब कहते हैं।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने जिस राष्ट्रवाद को मान्यता दी है, उसके बारे में उनके विचार महत्वपूर्ण हैं। जैसा कि वे कहते हैं-

> "दुर्भाग्य से भारत में अल्पसंख्यकों के लिए भारतीय राष्ट्रवाद एक नए सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ है। जिसे 'दैवीय अधिकार' कहा जा सकता है, मतलब बहुसंख्यकों की इच्छानुसार अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों का शासन। और अल्पसंख्यकों की ओर से सत्ता में हिस्सेदारी को 'सम्प्रदायवाद' की संज्ञा दी जाती है। जबकि बहुसंख्यक लोगों का सत्ता पर एकाधिकार ही राष्ट्रवाद कहा जाता है।"[2]

('स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटीज', पृ. 52)

बाबा साहेब का राष्ट्रवादी विचार बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के बारे में संकुचित नहीं है। यह राष्ट्रवाद निःसंदेह मानवीय समाज से जुड़ा है और आध्यात्मिक एकतत्व

के समान है। देशभक्ति का अनुपूरक शब्द है राष्ट्रवाद, ऐसा वे मानते हैं। आर्थिक समानता, राजनैतिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक एकता और सामाजिक दृढ़ता पर आधारित उनकी राष्ट्र-संकल्पना है। उनकी राष्ट्र-संकल्पना में व्यक्ति-पूजा को स्थान नहीं दिया है। भाषा और प्रदेश का भी बंधन नहीं है। उनका राष्ट्रवाद वैज्ञानिक और बुद्धिनिष्ठ है। उनमें भारत के प्राचीन इतिहास की सिर्फ पुनरावृत्ति नहीं है बल्कि नए मूल्यों पर आधारित विचार को स्वीकार करने की भी उसमें गुंजाइश है। इसीलिए आज के संदर्भ में बाबा साहेब के राष्ट्रवादी विचारों का परिशीलन करने की इस युग में उपयोगिता है।

राष्ट्र-संकल्पना का सामाजिक आधार

बाबा साहेब ने राष्ट्र-संकल्पना पर दार्शनिक-दृष्टि से ही विचार नहीं किया बल्कि सामाजिक आधार पर भी उतना ही विचार किया है। इससे भारत एक राष्ट्र है, ऐसा कहने का उन्होंने विरोध किया है। तत्व के आधार पर आप भारत को एक राष्ट्र मान सकते हैं, परंतु सामाजिक दृष्टि से ऐसा नहीं कह सकते। डॉ.अम्बेडकर के मतानुसार राष्ट्र अनेक वर्गों का समूह नहीं है। अगर राष्ट्रीय स्वतंत्रता को वास्तविक रूप देना होगा तो इस देश के विभिन्न वर्गों की स्वतंत्रता को दबाकर नहीं रखा जा सकता। मुख्यतः जो लोग निर्धन, पीड़ित, अस्पृश्य हैं, उनकी आजादी को प्राथमिकता देनी होगी। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार इस तरह व्यक्त किए हैं—

> "कोई देश और राष्ट्र, अगर अनिश्चित रूप में कहा जाए तो बिना किसी विशिष्ट आकृति का है। राष्ट्र के रूप में बिना किसी लाग-लपेट के अगर कहा जाए तो वह अनगिनत वर्गों से मिलकर बनता है। दार्शनिक तौर पर इसे 'राष्ट्र' की तरह मानना संभव है, किन्तु समाजशास्त्रीय रूप में बहुत से वर्गों के एक साथ रहने को 'राष्ट्र' नहीं कहा जा सकता।"[3]

('कॉंग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया,' पृष्ठ 191)

डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्र-संकल्पना में स्वतंत्रता का बहुत महत्व है। किसी भी देश की जनता को आजादी देना जरूरी है, वरना वह आजादी अपूर्ण रहेगी। देश की आजादी के लिए जनता में एकता होना उतना ही महत्वपूर्ण है। भारत में सिर्फ राजनैतिक एकता की स्थापना से कुछ नहीं होगा। उसके लिए जनता में बंधुभाव और पारिवारिक रिश्तों में भी एकता होना जरूरी है। इसके लिए उन्होंने कहा कि सब स्तरों पर भेदभाव को तिलांजलि देनी पड़ेगी और इसी से देश में एकता-निर्माण होगा, ऐसी आशा उन्होंने व्यक्त की। इसीलिए 17 दिसंबर 1946 में विधानसभा में दिए गए भाषण में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं-

> "मुझे इस देश के भावी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विकास के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है। मुझे मालूम है कि हम राजनीतिक, सामाजिक

और आर्थिक दृष्टि से विभाजित हैं। 'हम सभी स्वतंत्र इकाई में होते हुए भी, जिसमें मैं स्वयं भी हूँ, फिर भी उपयुक्त समय और परिस्थिति आने पर इस देश को दुनिया की कोई भी शक्ति विभाजित नहीं कर सकेगी।' हम लोग विभिन्न धर्म, जाति के होते हुए भी निश्चित ही संगठित होंगे, यह कहने में मुझे बिल्कुल भी संकोच नहीं हैं।" (भावार्थ)

अल्पसंख्यकों का तुष्टिकरण

'भारत देश अभी तक एक राष्ट्र नहीं बन पाया है, फिर भी एक दिन यह निश्चित ही राष्ट्र बनेगा'। डॉ. अम्बेडकर की यह भविष्य चेतावनी इस देश की जनता के लिए दिग्दर्शक स्वरूप की है। भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त होते हुए भी यहाँ के आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में बहुसंख्यक जनता इस आजादी से वंचित हुई है। ऐसे विभिन्न वर्ग अपने-अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। कुछ अल्पसंख्यक वर्ग इस मौके का फायदा उठाते हैं और दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। अपने स्वार्थ के लिए कुछ अवैधानिक मार्ग अपनाते हैं। शासन भी उनको इस सम्बन्ध में सहयोग करता है। इसी को 'अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीति' कहते हैं। बाबा साहेब ऐसी तुष्टिकरण की नीति के बारे में कहते हैं, ''अतिक्रमणकारी लोगों को खरीदना, उनके अनैतिक कार्यों को मदद करना तथा उनके शिकार होने वाले निरपराध लोगों की उपेक्षा करना ही तुष्टिकरण है।'' बाबा साहेब ऐसी नीति के विरोधी थे। उनके मत से अल्पसंख्यक लोगों को अपने सवालों के प्रति वैधानिक मार्ग का ही सहारा लेना चाहिए। विधिसम्मत बातचीत से उनके सवाल सुलझेंगे। सीमा और शर्तें भी जो निर्धारित होंगे, दोनों पक्ष उसे मानने हेतु बाध्य होंगे। डॉ. अम्बेडकर का बताया हुआ मार्ग संसदीय संवैधानिक स्वरूप का है। "इस देश के बहुसंख्यक हिंदुओं को इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो, हिंदू संकट में पड़ेंगे। जैसा कि हिटलर की नीति के शिकार मित्र राष्ट्र हुए।" ('पाकिस्तान एण्ड द पार्टिशन ऑफ इंडिया', पृ. 261) ऐसा बाबा साहेब ने कहा। इसलिए विवादग्रस्त विषय पर समय पर निर्णय लेना देश के लिए उपयोगी होगा।

तुष्टिकरण की नीति से कभी भी शांति नहीं होती। जिस समस्या से देश के आगे संकट खड़े होंगे, उस समस्या पर समय पर निर्णय लेना उचित रहता है। जब किसी नदी को पार करना हो, तब उसके ऊपर पुल तैयार करना बुद्धिमत्ता का लक्षण है, उसी तरह प्रत्येक समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेते वक्त न्यायपूर्ण बातों का आधार लेना आवश्यक है। अन्यायपूर्ण बातों का समर्थन करना, धमकी या उद्दंडता की शरण जाना, इस आधार पर अगर एकाध निर्णय लिया गया, तब वह निर्णय नैतिक भावना

का विरोधी हो जाता है। ऐसे निर्णय का बाबा साहेब ने कभी भी समर्थन नहीं किया। इस सम्बन्ध में डॉ. डी. आर. जाटव लिखते हैं,

> "फैसला वही है जो न्याय के आधार पर होता है। फैसला धमकियों तथा उद्दंडता के आधार पर कभी नहीं हो सकता है। जैसा कि पाकिस्तानी नेता कश्मीर के मामले को युद्ध द्वारा सुलझाना चाहते हैं।"

('डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन', पृ. 70)

इसलिए बाबा साहेब ने तुष्टिकरण की नीति को 'राष्ट्र विरोधी' बतलाया है। तुष्टिकरण में राग-द्वेष, कलह और उपद्रव रहते हैं, इसलिए सवैधानिक मार्ग का उपयोग करना ही सही है, ऐसा उन्होंने कहा है।

स्वयं-निर्णय का सिद्धांत

राष्ट्र-संकल्पना के सम्बन्ध में स्वयं-निर्णय का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। 19 वीं शताब्दी में स्वयं-निर्णय का अर्थ होता था जनता की इच्छानुसार सरकार बनाने का अधिकार। परंतु डॉ. अम्बेडकर ने इस सिद्धान्त को नया अर्थ प्रदान किया। उनकी राय के मुताबिक विदेशी शासन या राज्य इनसे आजादी प्राप्त करना है। फिर उस सरकार का स्वरूप कैसा भी रहे, उसी को 'स्वयं निर्णय' कहते हैं। 'स्वयं निर्णय' की जो आवाज उठानी है, वह देश के नागरिकों के द्वारा ही उठानी चाहिए, न कि किसी विशेष वर्ग या बाहरी शक्ति के द्वारा। विभिन्न राष्ट्रीयताएँ इकट्ठा रह सकती हैं, उनमें कितनी भी भिन्नताएँ हों, तब भी। इसलिए पृथक राष्ट्रीयता निर्माण करने के लिए अलग होना, जरूरी शर्त नहीं हो सकती।

राष्ट्रीयता के अंतर्गत सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए क्षेत्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करना आवश्यक नहीं है, ऐसा डॉ. अम्बेडकर का मानना था। 'स्वयं निर्णय' के सिद्धान्त का आधार लेकर कश्मीर के प्रश्न पर डॉ. जाटव कहते हैं-

> "आत्म-निर्णय भाषा, धर्म, क्षेत्र तथा अन्य बातों को ध्यान में रखकर होना चाहिए। आत्म-निर्णय की सीमाओं को देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि कश्मीर में आत्म-निर्णय का प्रश्न ही नहीं उठता है, क्योंकि कश्मीरी लोग एक राष्ट्र नहीं है और साथ-साथ बाह्य शक्तियाँ ऐसा चाहती हैं, न कि वहाँ के वास्तविक निवासी। इसके अतिरिक्त भौगोलिक एवं आबादी से संबंधित कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण कश्मीर में आत्म-निर्माण का सवाल साकार नहीं हो सकता है। यह बात दूसरी है कि भारतीय नेता किसी फैसले के अधीन कश्मीर का कोई भाग पाकिस्तान को दे दें।"

('डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन', पृ. 74)

राष्ट्र और समुदाय का सिद्धान्त

राष्ट्र संकल्पना का विश्लेषण करते समय राष्ट्र और समुदाय के सिद्धान्त को डॉ. अम्बेडकर ने नए विचार के रूप में रखा। राष्ट्र और समुदाय का भेद अधिकार क्षेत्र पर आधारित है। राजनैतिक तत्वज्ञानी लोगों ने अपना-अपना विचार रखा। उन लोगों के मतानुसार, समुदाय को क्रांति करने का अधिकार है, परंतु राष्ट्र को प्रथम होने का अधिकार सीमित रहता है। इस समुदाय को क्रांति करने का अधिकार क्यों होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर सिज्वीक ने दिया है। वे कहते हैं कि जो शासित और शोषित हैं, उन्हें क्रांति करने का अधिकार देने पर ही लोकतंत्र में बहुसंख्यक जनता का ऐसी क्रांति पर अंकुश रहेगा और वे निरंकुश सत्ताधारी नहीं होंगे; और ऐसी सामाजिक क्रांति का डर भी राज-क्षेत्र में फलदायी हो सकता है।

डॉ. अम्बेडकर ने राजनैतिक दार्शनिकों के विचारों के संदर्भ में समुदाय और राष्ट्र की व्याख्या की है। वे लिखते हैं-

> "जो लोग मतभेद रखते हुए भी स्वयं और विरोधी के लिए सामान्य उद्देश्य को स्वीकार करते हैं, उसे समुदाय कहते हैं। लेकिन जो लोग एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति की इच्छा का पालन करते हैं, उसे राष्ट्र कहते हैं।"[4]

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, खण्ड 8, पृ. 336)

इसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबा साहेब कहते हैं कि एक राज्य में अनेक छोटे-छोटे समुदाय या राष्ट्र रहते हैं। जिस राज्य में अनेक समुदाय रहते हैं वहाँ एक समुदाय दूसरे के विरुद्ध जा सकते हैं, परंतु अंतिम निर्णय का सवाल जब आता है, तो वे एक दूसरे के प्रति एकता की भावना का अनुभव करते हैं। परंतु जिस राज्य में अनेक राष्ट्र रहते हैं और एक-दूसरे से पृथक होने का दावा करते हैं, उनका यह संघर्ष अंतिम उद्देश्य से संबंधित रहता है। राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह होता है जो साधारणतः एक ही देश में रहता है और सामान्य विधिनियम, रीति-रिवाज, परंपरा आदि से सम्बन्धित होता है। और उनके रहन-सहन में भी समरूपता रहती है।

समुदाय के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि उनका अधिकार क्रांति तक ही सीमित रहता है। क्योंकि उन्हें इसमें समाधान मिलता है। सरकार को समय-समय पर बदलना चाहिए, यह उनकी अभिलाषा होती है। उनका संघर्ष अंतिम उद्देश्य के लिए कभी भी नहीं रहता। शासन के प्रति असंतुष्ट वर्ग राष्ट्र होता है। जब तक यह राष्ट्र स्वतंत्र नहीं होता, तब तक समाधान नहीं होता।

राष्ट्र संकल्पना और कश्मीर

डॉ. अम्बेडकर ने राष्ट्र की जो संकल्पना की है, वह वैज्ञानिक है और लोकतांत्रिक सिद्धान्त का पालन करती है। इस संकल्पना के आधार पर कश्मीर के प्रश्न पर विचार करने की आज नितांत आवश्यकता. है। कश्मीर में अनेक संप्रदाय के लोग रहते हैं। इसलिए कश्मीर को 'राष्ट्र' संबोधित करना भी गलत है। कश्मीर की आजादी के सम्बन्ध में वहाँ के मूल निवासी बहुत ज्यादा मांग करते नहीं दिखाई देते हैं। पाक और भारत की राजनैतिक सत्ता स्पर्धा में यह सवाल दिन-ब-दिन अधिक बिगड़ता जा रहा है। कश्मीर की मुक्ति के सवाल पर यदि धर्मनिरपेक्षता की दृष्टि से विचार किया गया होता तो शायद इसे हल कर लिया जाता। परंतु कश्मीर के सम्बन्ध में जो विचार किया जाता है, वह केवल सांप्रदायिक आधार पर ही किया जाता है। सांप्रदायिकता के मूल में संकुचित हित और धार्मिक कट्टरता होने के कारण समाजविरोधी और राष्ट्र विरोधी कार्रवाइयों या गतिविधियों को अधिक बल मिलता है। जब तक समाज से धार्मिक सांप्रदायिकता और क्षेत्रीय भक्तिवाद नष्ट नहीं किया जाता, तब तक जनता को भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ेगा। सांप्रदायिक भावना के कारण राष्ट्रहित धोखे में आ सकता है। इस बारे में डॉ. अम्बेडकर ने चेतावनी देते हुए कहा कि सांप्रदायिकता पर विश्वास रखनेवाले, जाति और धर्म आपस में अविश्वास की भावना पैदा करते हैं।

जब तक एक-दूसरे से डरकर और शत्रुत्व की भावना से व्यवहार रखेंगे, तब तक सामाजिक प्रवृत्ति और राष्ट्रीय दृढ़ता असंभव रहेगी। जब तक यह शक्तियाँ एक-दूसरे को दबाने का विचार करती रहेंगी, तब तक राष्ट्रवाद को धोखा होने का डर सदैव रहेगा। बाबा साहेब ने इन सभी पर गंभीर रूप से सोचते हुए ही भारत को पाकिस्तान से अलग करने की सलाह दी थी। जिस आधार पर पाकिस्तान भारत से अलग हुआ, वही विचार कश्मीर के मूल में भी है। समय रहते हुए अगर यह विचार हमारे ध्यान में नहीं आएगा तो कश्मीर का सवाल हल करना भी आसान न होगा।

सांप्रदायिक शक्ति का आक्रोश

कश्मीर का सवाल सांप्रदायिक शक्ति के आक्रोश में अटका हुआ है। वह दो परस्पर शक्तियों के बीच में है। यह दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ भारत और पाक हैं। इन दोनों शक्तियों के विरोध के कारण ही अखण्ड भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान बना। यह दोनों सांप्रदायिक शक्तियों का संघर्ष सीमा पार कर गया। हिंदू को अपनी प्रभुसत्ता मुस्लिमों पर थोपने की जिद्द है, तो मुस्लिमों को अपने ऐतिहासिकता के

आधार पर शासक समाज निर्माण करने की जिद्द है। 'हिंदू राष्ट्र' के नाम पर इन सांप्रदायिक शक्ति ने राष्ट्रीय मूल्यों को ही पावों तले दबा दिया है। अगर हम राष्ट्रीय या धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की हिफाजत करते हैं तो हमारे समाज की शक्ति गायब हो जाएगी, यह डर मुस्लिमों को है। हिंदू और मुस्लिमों ने एक दूसरों के डर से ही अपनी-अपनी युद्ध छावनियाँ खड़ी कर रखी हैं। बाबा साहेब ने भारत और पाक के विभाजन की स्थिति के बारे में लिखा है कि,

> "दूसरी स्थिति यह है कि...हिंदू और मुस्लिम एक-दूसरे के खिलाफ तैयारी कर रहे हैं। यह एक तरह की दो बैरी राष्ट्रों के बीच ताकत की दौड़ है। अगर हिंदूओं के पास बनारस विश्वविद्यालय है तो मुस्लिमों के पास भी अलीगढ़ विश्वविद्यालय होना चाहिए। अगर हिंदू शुद्धि आंदोलन की शुरूआत करते हैं तो मुसलमानों को भी तबलीग आंदोलन चलाना ही चाहिए। अगर हिंदू अपना संगठन शुरू करते हैं तो मुसलमानों को तंजीम चलाना चाहिए। अगर हिंदू आर. एस. एस. जैसा संगठन चलाते हैं तो मुसलमानों को खाकसार चलाना चाहिए। मुस्लिमों को डर है कि हिंदू उन्हें अपने अधीन कर लेंगे। जबकि हिंदू डरते हैं कि मुस्लिम उन्हें पुनः जीत लेंगे। दोनों युद्ध के लिए तैयारी करते हुए दिखाई देते हैं और एक-दूसरे की तैयारी पर हर किसी की नजर भी है।"[5]
>
> **('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस', खंड 8, पृ. 246)**

बाबा साहेब की राय में हिंदू और मुस्लिम आपस में टकराने की मानसिकता में हैं। इसलिए वे विश्वविद्यालय निर्माण आंदोलन और संगठन एक-दूसरे के डर से कर रहे हैं। और यह संघर्ष राष्ट्रद्रोही है, ऐसा प्रतीत होता है। भारत के विभाजन सम्बन्धित कश्मीर के सवाल पर हिन्दू और मुस्लिम की भूमिका अभी भी परस्पर विरोधी है। और इस भूमिका में राष्ट्र मूल्य के परिणाम न होने के कारण यह कृत्य भी राष्ट्र विरोधी है, ऐसा नजर आ रहा है। मुस्लिम मानसिकता का विश्लेषण करते हुए बाबा साहेब ने कहा है कि,

> "कश्मीर राज्य में शासक हिंदू है, लेकिन प्रजा में बहुमत मुस्लिमों का है। कश्मीर में प्रतिनिधि सरकार के लिए मुस्लिमों ने संघर्ष किया। क्योंकि कश्मीर में प्रतिनिधि सरकार का अर्थ है–हिंदू राजा से मुस्लिम आवाम को सत्ता का हस्तांतरण। दूसरे राज्यों में जहाँ राजा मुस्लिम है लेकिन जनता में बहुसंख्या हिंदुओं की है। ऐसे राज्यों में प्रतिनिधि सरकार का अर्थ मुस्लिम शासकों से हिंदू जनता को सत्ता का हस्तांतरण है। यहाँ सवाल उठता है कि एक तरफ तो मुस्लिम प्रतिनिधि सरकार का समर्थन करते हैं और दूसरी ओर उसका विरोध भी करते हैं।"[6]
>
> **('डॉ. बाबा साहेब रांइटिंग्स एण्ड स्पीचेस', खंड 8, पृ. 236)**

कश्मीर प्रांत हिंदू राजा के आधिपत्य में हैं परंतु प्रजा मात्र बहुसंख्यक मुस्लिम है। इस कारण वहाँ की मुस्लिम जनता का प्रतिनिधि सरकार की मांग करना फायदेमंद है। परंतु जिस प्रांत में मुस्लिम सत्ताधारी हैं और प्रजा बहुसंख्यक हिंदू है, ऐसे प्रांत में प्रतिनिधि सरकार की मांग मुस्लिम नेता क्यों नहीं करते? इस सवाल पर बाबा साहेब ने अपनी स्पष्ट राय व्यक्त की है। वैसे तो कश्मीर के सवाल पर भी सत्ता के लिए हिंदू और मुस्लिम के बीच रस्साकशी है।

क्या ऐसी परिस्थितियों में हिंदू और मुस्लिमों के बीच एकता निर्माण की जा सकती है? इस सवाल पर बाबा साहेब ने निष्पक्ष रूप में विचार किया था। लेकिन मान लीजिए कि हिंदू और मुसलमान कभी राजनैतिक सत्ता में आए, ऐसी स्थिति में क्या उम्मीद की जाए कि उसी सत्ता का वे सामाजिक सुधार के लिए प्रयोग करेंगे? इसमें आशा की संभावना कम है। (**'उक्त', पृ. 247**)

बाबा साहेब ने इस सवाल का जो जवाब खोजा था, वह नकारात्मक ही था। फिर भी कश्मीर का सवाल कैसे हल करना चाहिए, इसका रास्ता उन्होंने बताया था। किन्तु उसकी ओर राजनीतिज्ञों और विचारकों ने ध्यान नहीं दिया, इस कारण देश के सामने कश्मीर का सवाल आज भी गम्भीर रूप में है। कश्मीर के सम्बन्ध में हिंदू सांप्रदायिकता और मुस्लिम सांप्रदायिकता कितनी भी राष्ट्रीयता की भूमिका रखें फिर भी निरर्थक ही रहेगा। क्योंकि दोनों शक्तियों का मूल उद्देश्य राष्ट्र-निर्माण न होकर सांप्रदायिक शक्तियों के बल पर अपने-अपने धर्म के आधार पर राज्य-निर्माण करना ही है। उनकी यह मानसिकता धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ है। इस रास्ते से आज तक न तो कश्मीर का सवाल हल हो सका और न आगे हल होने की कोई संभावना है।

भारत के विभाजन के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर ने 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इण्डिया' ग्रंथ लिखकर म. गांधी और बेरि. जिन्ना को सही दिशा दिखाई थी और स्वतंत्र भारत की नींव रखी। इसी ग्रंथ के आधार पर और डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर के सम्बन्ध में समय-समय पर जो विचार व्यक्त किए हैं, उसी के आधार पर कश्मीर का सवाल हल किया जा सकता है। कश्मीर का सवाल हल करने के लिए कोई भी राष्ट्र विरोधी साम्प्रदायिक विचार निरर्थक साबित होगा। केवल बाबा साहेब की विचारशक्ति ही इस देश में सही राष्ट्रवादी शक्ति है और इसी राष्ट्रवादी विचारधारा से ही कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए सभी को सोचना पड़ेगा।

अध्याय 2

कश्मीर के निर्माण की मानसिकता

> *"अगर यहाँ हिंदू राज आ जाता है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि इस देश में भयंकर संकट खड़ा हो जाएगा। जैसा कि हिंदू कहते हैं कि हिंदुत्व या हिंदूवाद समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुता का प्रतीक है। यह केवल एक भ्रम ही है। असल में प्रजातंत्र के साथ इसका कोई मेल ही नहीं है। हिंदू राज को किसी भी तरह रोकना होगा।"*[1]
>
> **–डॉ. बी. आर. अम्बेडकर**

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस' खंड-8, पृ. 358)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का कश्मीर की समस्या के बारे में बिल्कुल स्पष्ट और स्वस्थ दृष्टिकोण था। 'आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों में जो हुआ, ठीक उसी तरह की घटना भारत में न होने पाए, इसलिए मुसलमानों को किसी एक राज्य में उनकी इच्छा के विरूद्ध न ठूँसा जाए', यह बात जो बाबा साहेब ने कही थी, सच हुई है। अपने स्वतंत्र राष्ट्र-निर्माण हेतु सभी मुसलमानों ने पाकिस्तान लेने के लिए एकजुट होकर संघर्ष किया और उसे पाकिस्तान के रूप में हासिल किया। "उसी विभाजन का परिणाम आज हमारे सामने कश्मीर है"-ऐसे निःसंकोच एवं निसन्दिग्ध विचार डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने दिए थे। कश्मीर की समस्या का हल कैसे किया जाए, इस बात पर उन्होंने समय-समय पर मार्गदर्शन किया। लेकिन उनके मौलिक विचारों को अनदेखा कर, सत्ता के नशे में चूर धर्मांध नेताओं ने जानबूझ कर इसे और उलझा दिया। आज भी कश्मीर प्रश्न धधक रहा है और कश्मीर, जिसे 'भारत का नंदनवन' कहा जाता था, आज वह 'युद्धस्थल' बन गया है। ऐसा क्यों हुआ? उसके पीछे कौन-सी मानसिकता काम कर रही है? इसका निष्पक्ष रूप से विश्लेषण करना बहुत ही जरूरी है।

विभाजन की मानसिकता

जिस तरह की मानसिकता भारत-पाकिस्तान के विभाजन के संदर्भ में थी, ठीक वैसी ही मानसिकता कश्मीर की समस्या की पृष्ठभूमि में विद्यमान रही है। भारत और

पाक के निर्माण के पहले अंग्रेजों के खिलाफ संघर्षरत हिंदू-मुसलमान नेताओं में अगर धर्मनिरपेक्ष तथा लोकतंत्र के लिए समझ होती तो भारत का विभाजन कदापि न होता और भारत खंडित न होता, परंतु हुआ इसके विपरीत।

धर्मांधता आगे और हिंदू-मुस्लिम एकता पीछे रह गई। यह इतिहास का कड़वा सच है। लोकतंत्र की व्यापक मूल अवधारणा को इन नेताओं ने भुला दिया। इसलिए बाबा साहेब ने इन भ्रमित नेताओं को लोकतंत्र के दर्शन का पाठ पढ़ाया। लोकतंत्र प्रणाली की छाया में रहनेवाले अल्पसंख्यकों को और बहुसंख्यक समुदायों को किन कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए, इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि,

> "प्रजातंत्र के लिए जैसा मैं सोचता हूँ, एक चीज बहुत जरूरी है। वह यह कि प्रजातंत्र के नाम पर बहुसंख्यकों के द्वारा अल्पसंख्यकों पर कुशासन नहीं होना चाहिए। बहुसंख्यकों के शासन में अल्पसंख्यकों को सुरक्षित होने का अहसास होना चाहिए। नैतिकता को चोट नहीं पहुँचनी चाहिए।"[2]

('डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर चरित्र' : खंड 11वा, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 36-37)

लोकतंत्र को सुचारू रूप से चलाने हेतु सत्ताधारी बहुसंख्यक वर्ग की यह नैतिक जिम्मेदारी बन जाती है कि वे अल्पसंख्यक समुदाय का हित देखें तथा उनका नैतिक पतन न होने दें, यह बात गाँठ में बाँध लेनी चाहिए, ऐसा डॉ. अम्बेडकर ने समझाया। भारत को आजादी प्राप्त होने के पहले तथा बहुसंख्यक हिंदुओं की सत्ता के पहले उन्होंने लोकशाही की नैतिकता का पालन नहीं किया। इसीलिए पाकिस्तान को अपना अलग रास्ता खोजना पड़ा। पाकिस्तान के सवाल पर केवल मुसलमान देशद्रोही, राष्ट्रद्रोही न समझे जाएँ, न जिन्ना को देशद्रोही समझा जाए और चाहे स्वयं हिंदू अपने-आप को राष्ट्रवादी समझें फिर भी वे इतिहास की कसौटी पर सच साबित नहीं हो सकते। क्या बेरिस्टर जिन्ना सचमुच में धर्मान्धतावादी थे? क्या वे धर्मनिरपेक्षतावादी नहीं थे? क्या उन्होंने भारत की आजादी के लिए संघर्ष नहीं किया? अन्त में उन्होंने पाकिस्तान की मांग क्यों की? आदि सवालों के जवाब खोजने का प्रयास किया गया तो बेरिस्टर जिन्ना की किसी भी प्रकार की कोई गलती नहीं दिखाई देती। पाकिस्तान के निर्माण के बाद उन्होंने यदि कश्मीर पर अपना हक़ जताया तो उसमें भी उनकी कोई गलती दिखाई नहीं देती। आजादी के पहले की राजनीतिक घटनाओं पर गौर किया जाए तो ऐसी कई चीजें सामने आती हैं। इसके लिए हमको बेरिस्टर जिन्ना और हिंदुत्ववादियों के बीच के टकराव की ओर ध्यान देना जरूरी है।

बेरि. जिन्ना की शोकान्तिका

पाकिस्तान के प्रेरक बेरि. जिन्ना की पृष्ठभूमि ही राष्ट्रीय आंदोलन की थी। उन्होंने भारत के करोड़ों मुसलमानों के बीच राजनैतिक जागृति पैदा की और उन्हें राष्ट्रीय

आंदोलन की मुख्यधारा में सहभागी बनाया। 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग के सक्रिय कार्यकर्ता होकर इस संगठन के अध्यक्ष भी थे। राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य पार्टी काँग्रेस में वे अपने कर्तृत्व से चमकने लगे। उन्हें लोग 'मुस्लिम समाज के गोखले' नाम से सम्बोधित करने लगे। काँग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में मुस्लिम नेताओं के विरोध को न मानते हुए उन्होंने मुसलमानों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र की मांग का 1911 में विरोध किया। 1916 में सरकार ने तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उस समय उन्होंने तिलक का वकीलपत्र लिया था तथा मुकदमा लड़े। राष्ट्रीय आंदोलन में उनके प्रभावी नेतृत्व का सम्मान करते हुए बंबई के सुप्रसिद्ध काँग्रेस हाऊस के सभागृह का 'जिन्ना हाल' नामकरण किया गया। तिलक और जिन्ना में उन दिनों घनिष्ठता थी।

बेरि. जिन्ना के कारण 1916 में लखनऊ का 'काँग्रेस-मुस्लिम लीग समझौता' हो गया एवं इससे राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूत आधार मिला। इस समझौते के अनुसार स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र को मान्यता मिली। हिंदू प्रान्त के मुस्लिमों को अल्पसंख्यक मानकर अधिक प्रतिनिधित्व मिला। इसी तरह बहुसंख्यक मुस्लिम प्रान्त में हिंदुओं को प्रतिनिधित्व दिया गया था। काँग्रेस के केन्द्रीय विधिमण्डल में तो हिंदुओं को 2/3 बहुमत मिलने का विश्वास था। तिलक एवं जिन्ना के प्रयास से किए गए समझौते का लाला लाजपत राय, मालवीय, मुंजे, केलकर (जो बाद में हिंदू सभा के नेता हुए) आदि ने इसका स्वागत किया और इसे अपना समर्थन दिया था। 'लखनऊ समझौता' धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य आधार था। इस समझौते के प्रमुख बेरि. जिन्ना 1937 से 1939 के बीच एकदम से बदल जाते हैं तथा राष्ट्रीयतावाद की भाषा बोलनेवाले जिन्ना विद्रोह की भाषा बोलने लगते हैं कि–"मैं प्रथम मुस्लिम हूँ और आखिर तक मुस्लिम रहूँगा।" वे धर्मांध और नफरत की भाषा इस्तेमाल करते हुए गरजते हैं कि,

> "हिंदूओं की नालायकी के कारण अंग्रेजों का राज्य आया और अभी स्वराज्य के नाम से पुनः वे रामराज्य, बनिया-पूंजीपतियों की सत्ता लाकर मुसलमान तथा अन्य लोगों को गुलाम बनाना चाहते हैं, पर हम मुस्लिमों ने इस देश पर सैंकड़ों वर्षों तक राज्य किया, हम मुसलिम गुलाम क्यों बनें? अभी हमारे सामने एक ही रास्ता खुला है। हमें अपना इस्लाम का राज्य, न्याय का राज्य, गरीबों का राज्य, पाकिस्तान चाहिए। पाकिस्तान जिन्दाबाद।"

('सरदार वल्लभभाई पटेल' : प्रभाकर वैद्य, पृ. 171)

पाकिस्तान की घोषणा

एक धर्मनिरपेक्ष कठोर व्यक्ति और अंग्रेजों के विरूद्ध लड़नेवाले योद्धा की यह शोकांतिका क्यों? इसकी पूरी जांच किए बिना हम जिन्ना को न्याय नहीं दे पाएँगे। बेरि. जिन्ना में यह परिवर्तन तिलक की मृत्यु के बाद आया।

तिलक के बाद कॉंग्रेस पर गांधीजी की पकड़ मजबूत हुई। उससे राष्ट्रीय आंदोलन ने एक अलग रूप लिया। बेरि. जिन्ना जैसे राष्ट्रीय मुस्लिम नेता को बाजू में रखकर उनकी जगह अली बन्धु जैसे पाखण्डी नेताओं और धर्मांध मुल्ला-मौलवियों ने ली। इस कारण 'लखनऊ समझौते' से जो राष्ट्रीय एकता निर्मित हुई थी, वह धर्मनिरपेक्षता की पटरी से उतर गई। परिणामस्वरूप स्वराज्य आंदोलन केवल हिंदुओं का आंदोलन हो गया। खिलाफत आंदोलन से मुस्लिम समाज में मुल्ला-मौलवियों का अकारण महत्व बढ़ा तथा जातीय उन्माद भी बढ़ा। मुस्लिम धर्मांधता के विरोध में हिंदू जातिवाद बढ़ा। पहले के राष्ट्रीय नेता पं. मालवीय, लाला लाजपत राय, मुंजे, केलकर ने हिंदू जाति का प्रचार-प्रसार किया और इसी समय आर्य समाज जैसा राष्ट्रीय और सुधारवादी आंदोलन हिन्दू राष्ट्रवाद के जाल में फंस गया। उसी समय बेरि. सावरकर के हिन्दू राष्ट्रवाद को और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर. एस. एस.) जैसे हिंदू फासिस्टवादी संगठनों को बढ़ावा मिला। इस कारण राष्ट्रीय आंदोलन का चेहरा बदल गया तथा उस आंदोलन की बहुत बड़ी हानि हो गई।

गांधी और नेहरु ने राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष मानसिकता का समर्थन किया तथा 'हम ही अखिल राष्ट्र के एकमात्र नेता हैं' इस अहंकार से वे हिंदूवादी नेता घोषित हुए। सही में राष्ट्रीय आंदोलन-निर्माण करने के लिए हिंदू, मुसलमान और अस्पृश्यों का होना जरूरी हो, इस तरह की स्थिति पैदा करना जरूरी था। किंतु बेरि. जिन्ना को अलग करते हुए हिंदू नेताओं ने राष्ट्रीय आंदोलन को तोड़ दिया। उन्होंने दलितों के नेता डॉ. अम्बेडकर को कभी भी नजदीक लेने का प्रयत्न नहीं किया। हिंदुत्ववादियों की राजनीति सरदार वल्लभभाई पटेल की संकीर्ण राजनीति के साथ मिल गई। उनकी सत्ता की राजनीति का मतलब था–'प्रगतिशील हिन्दू समाज और उस समाज के उच्चवर्णीय लोग।' वे 8-9 करोड़ मुसलमान समाज को किसी भी प्रकार का महत्व नहीं दे रहे थे। वे करोड़ों अस्पृश्यों और आदिवासियों को भी तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। ऐसे अराष्ट्रीय वातावरण में बेरि. जिन्ना कैसे रहते? इसलिए उन्होंने मुस्लिम समाज के और स्वयं के आत्मसम्मान हेतु पाकिस्तान की घोषणा की।

भारत का विभाजन

पाकिस्तान की घोषणा करके बेरि. जिन्ना ने द्विराष्ट्रवाद सिद्धान्त की घोषणा की। मुसलमानों के लिए पाकिस्तान हो, इसलिए उन्होंने स्वयं कोई कार्यक्रम नहीं दिया। किन्तु

उन्होंने हिंदू, काँग्रेस और गांधी के विरुद्ध द्वेष और जातीय भावना भड़कानेवाली मुहिम शुरू की थी। जिन्ना की इस मुहिम का जवाब देने का प्रयास रा. स्वयंसेवक संघ और हिंदुत्ववादियों की ओर से चालू था। अंग्रेजों के कड़े बंदोबस्त के कारण जातीय दंगे नहीं हुए, किन्तु जातीय द्वेष की बारूद दोनों तरफ की सुरंगों में ठूँस-ठूँस कर भरी हुई थी। दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर इंग्लैंड के कमजोर होने के कारण भारत पर साम्राज्यशाही खत्म होने का समय आ गया था। काँग्रेस के 'भारत छोड़ो' के जबर्दस्त आंदोलन के कारण देश के स्वतंत्र होने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। गांधीजी को अखण्ड भारत चाहिए था, परंतु बेरि. जिन्ना को पाकिस्तान चाहिए था। इसके लिए गांधीजी ने बेरि. जिन्ना को अखिल भारत का प्रधानमंत्री बनाने का निश्चय किया, किन्तु जिन्ना ने किसी भी प्रकार का विकल्प स्वीकार न करते हुए पाकिस्तान की मांग की। जिन्ना का द्वेष करते-करते सरदार पटेल के मन में मुस्लिमों के प्रति भी बेहद नफरत की भावना पैदा हो गई। इसका परिणाम ऐसा हुआ कि तात्विक दृष्टि से वे गांधीजी से दूर होते गए और आर. एस. एस. के नजदीक हो गए। 1942 के स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानियों के सत्कार-समारोह में मुस्लिम विरोधी भावना तेज हो गई। इसी कारण राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और प्रखर हिन्दू राष्ट्रवादियों को अपनी राजनीति करने का मौका मिला।

इसी परिवेश का फायदा सरदार वल्लभभाई पटेल ने लिया। विभाजन का विरोध करने वाले गांधीजी को अंधेरे में रखकर लार्ड माऊंटबेटन के साथ समझौता करके भारत के विभाजन को पहली मान्यता दी। मि. एटली के घोषणानुसार सत्ता हस्तांतरण और विभाजन 15 जून, 1948 को होना था, किन्तु वह 10 माह पहले लेकर 15 अगस्त, 1947 का दिन तय किया। विभाजन के निर्णय के बाद दोनों देशों की सीमा निश्चित करने के लिए सर सिरील रडक्लिफ जो प्रख्यात ब्रिटिश कानूनविद थे, की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया तथा 6 माह में रिपोर्ट के बदले पाँच सप्ताह में ही कमीशन ने रिपोर्ट दे दी। आखिर में लोगों की संख्या स्थानांतरण के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। किन्तु समयाभाव के कारण वह रिपोर्ट अमल में नहीं आई और स्वतंत्रता दिवस हिंदू-मुस्लिम के खून से नहा गया। हिंदू जातिवादियों ने 'भारत में सिर्फ अपनी ही सत्ता है'—इस मगरूरी में मुसलमानों का कत्ल किया और पाकिस्तान के मुसलमानों ने भी इसी के जवाब स्वरूप कत्ल किए। खून की इस होली से भारत और पाकिस्तान दोनों देश स्वतंत्र हुए।

भारत के विभाजन का संक्षिप्त इतिहास लिखने का कारण यह है कि कश्मीर का प्रश्न इसी विभाजन से सम्बन्धित हैं। डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार, "इस विभाजन का कश्मीर भी आखिर का एक हिस्सा है।" जिस हिन्दू मानसिकता की अतिरेकी मानसिकता से पाकिस्तान का विभाजन हुआ, वही मानसिकता कश्मीर के प्रश्न को अति गंभीर करने में सक्रिय कैसी हुई, इस बात पर सोचना भी निहायत जरूरी है।

रियासतों का सवाल

विभाजन और सत्ता हस्तांतरण के बीच 2 सितंबर, 1946 को अस्थायी मंत्रिमंडल अस्तित्व में आया था। जबकि उस मंत्रिमंडल के पं. नेहरु प्रधानमंत्री थे, फिर भी ब्रिटिश गवर्नर जनरल ही ब्रिटिश हुकूमत के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सरकार का प्रमुख सूत्रधार था। रियासत से सम्बन्ध रखने का, उनसे विचार-विमर्श करने का और समय-समय पर उन पर नियंत्रण रखने का काम "पोलिटिकल डिपार्टमेंट" करता था। भारत में सत्ता हस्तांतरण हुआ और ब्रिटिश सत्ता का अंत हुआ। इसके साथ यह सवाल पैदा हुआ कि 650 रियासतें और उनकी अनियंत्रित सत्ता में आनेवाले 9-10 करोड़ लोगों का क्या होगा? सत्ता हस्तांतरण के बाद उनका स्थान कहाँ रहेगा? विभाजन के बाद कौन-सी रियासत कहाँ जाएगी? ऐसे अनेक सवाल उस समय सामने आए थे और उनके निश्चित जवाब किसी के पास नहीं थे।

ऐसी परिस्थिति क्यों बनी? क्योंकि आजादी के आंदोलन के नेताओं ने रियासत के बारे में ऐसी कोई भी नीति निर्धारित नहीं की थी। रियासत में जिन स्थानीय लोगों ने आंदोलन किया था, उसकी तरफ राष्ट्रीय स्तर के नेताओं ने अनदेखी की। 1930 से 1932 के बीच हुए गोलमेज सम्मेलन में भी राष्ट्रीय नेताओं ने रियासतों के सवाल पर ध्यान नहीं दिया। रियासत और उनकी प्रजाजनों के सवाल अत्यंत गंभीर हैं, इसके बारे में महसूस कर, ब्रिटिश सरकार को बता देने वाला अकेला सजग नेता था डॉ. अम्बेडकर। रियासत के सवाल पर बोलने का एकाधिकार केवल रियासतों के प्रमुखों का है, ऐसा दावा जब रियासतों के प्रमुखों ने किया, उस समय गांधीजी चुप रहे। रियासतों की प्रजा की तरफ से बोलनें का अधिकार काँग्रेस को नहीं और रियासतों की प्रजा के बारे में हमें कुछ भी कहना नहीं है, ऐसे विचार पूरे देश के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाले महात्मा गांधी ने व्यक्त किए। रियासतों के प्रमुख उस रियासत के लोगों के प्रतिनिधि के रूप में क्यों बोल नहीं सकते? ऐसा स्पष्ट और सबसे पहले सवाल डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने उठाया। इसलिए रियासतों की प्रजा और उनके प्रतिनिधित्व के सवाल गोलमेज सम्मेलन में उठाने का श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है। उस समय गांधीजी ने मौन धारण न किया होता और डॉ. अम्बेडकर के विचारों का विरोध न किया होता तो बँटवारे के समय रियासतों का जो गंभीर सवाल सामने आया था, वह शायद उपस्थित न हुआ होता।

वल्लभभाई की नीति

बँटवारे के पहले रियासतों की प्रजाजनों का रियासतों के विरुद्ध 'चले जाव' आंदोलन निर्णायक अवस्था में आया था। इस आंदोलन से भयग्रस्त रियासत प्रमुखों को 'पोलिटिकल डिपार्टमेंट' के प्रमुख कारफील्ड साहेब ने सलाह दी थी कि, 'अगर ब्रिटिश

सत्ता चली गई तो तुम्हारे हाथ में संपूर्ण सत्ता सार्वभौम रूप में आ जाएगी।' अर्थात, अंग्रेजों के जाने के बाद रियासतें स्वतंत्र हो जाएँगी और उनकी सत्ता सार्वभौम रहेगी, ऐसा उनका कहना था। एक तरफ ऐसी दिलासा रियासतों को मिली थी तो दूसरी ओर रियासतों में प्रजाजनों का आंदोलन तीव्र हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में बँटवारे के दौरान वल्लभभाई पटेल भारत के गृहमंत्री बने थे और इन रियासतों की देखरेख की जिम्मेदारी गृहमंत्री पर आई थी। वल्लभभाई पटेल काँग्रेस के वरिष्ठ नेता होते हुए भी उन्होंने रियासतों का पक्ष लिया और रियासत प्रजाजनों के बारे में अपना द्वेष व्यक्त किया। भारत में उस समय लगभग 650 रियासतें थीं और उनमें अधिकांश हिंदू रियासतें थीं। हैदराबाद व भोपाल को छोड़कर शेष महत्वपूर्ण रियासतें हिंदू थीं। इन रियासतों को भारत में शामिल करने का कार्य वल्लभभाई पटेल ने किया, इसलिए उनको 'भारत का बिस्मार्क' कहा जाता है। उनकी ऐसी प्रशंसा करके 'हिटलरी नाजीवादियों' का समर्थन करनेवालों की कमी नहीं। आज भी हिंदुत्ववादियों को वल्लभभाई पटेल सच्चे नेता के रूप में प्रेरक लगते हैं।

वल्लभभाई पटेल ने रियासतों को भारत में विलय किया, लेकिन निश्चित क्या किया? तो क्या उन्होंने रियासतों की सभी शर्तें मंजूर कर लीं? वल्लभभाई ने जो एकात्मता लायी, वह रियासतों के सामान्य दलित, श्रमिक प्रजाजनों की नहीं, बल्कि उनका शोषण करने वाले राजभक्त उच्चवर्गीय और उच्चवर्णीय शोषकों की थी। वल्लभभाई द्वारा निर्मित रियासतें देश के सामंतशाही, जमींदारी, साहूकारी, भ्रष्टाचार और काला बाजार के सुरक्षित अड्डे बन गई थीं। रियासत प्रमुखों को उन्होंने प्रतिष्ठा, राजपद, सम्मान और भत्ते दिए। अर्थात् राष्ट्र के नाम से इन शोषकों का पुनर्जीवन वल्लभभाई ने किया। हैदराबाद और कश्मीर की बड़ी और महत्वपूर्ण रियासतें स्वतंत्र और सार्वभौम रखने की पटेल ने अनुमति दी थी। हैदराबाद के निजाम को भारत में लगभग स्वायतत्ता का अधिकार देने और आंतरिक सवालों को हल करने के लिए सर्वाधिकार देने का जो 'मॉक्टन मसौदा' तैयार हुआ था, उस पर लार्ड माउन्टबेटन के प्रेम के लिए वल्लभभाई पटेल ने हस्ताक्षर किए। निजाम की गलती की वजह से वल्लभभाई ने पुलिस एक्शन कर निजाम रियासत को भारत में विलय कर लिया। उसी समय उन्होंने निजाम से गुफ्तगू करके उनकी और उनकी सम्पत्ति की रक्षा करने के साथ ही उन्हें काँग्रेस में सम्मानित करने का आश्वासन दिया। इस समय भी कश्मीर का सवाल अनुत्तरित ही रहा।

कश्मीर की मुक्ति का संघर्ष

कश्मीर रियासत अन्य रियासतों से अलग और महत्वपूर्ण थी। भारत और पाक के बीचोबीच होने के कारण कश्मीर का भारत में या पाक में विलय हो, यह एक

विवादास्पद मामला था। कश्मीर रियासत का राजा हिंदू और बहुसंख्यक जनता मुसलमान थी। फिर भी उनमें इन सबके बावजूद अच्छी तरह से रहने की तनावरहित भावना थी। इसका सारा श्रेय कश्मीर प्रजाजन आंदोलन का नेतृत्व करने वाली 'कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेन्स' जैसे जुझारू संगठन को देना चाहिए। इस संगठन की नीति प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी विचारधारा की थी। कश्मीरी प्रजाजन का आंदोलन भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का एक अंग था। यह आंदोलन धर्म-जाति निरपेक्ष और व्यापक एकजुट होकर चलाना चाहिए, यही इस संगठन की धारणा थी। संगठन के मुक्ति आंदोलन को कश्मीरी, हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, सिख आदि प्रजाजनों का पूरा-पूरा समर्थन था। शेरे-कश्मीर शेख अब्दुल्ला इस आंदोलन के सर्वमान्य नेता थे। पं. नेहरु के जन्म से कश्मीरी होने से और शेख अब्दुल्ला के उनके निकटतम विश्वासपात्र नेता होने के कारण कश्मीर की जनता ने नेहरु का नेतृत्व मान लिया। ऐसी स्थिति के परिणामस्वरूप महाराजा कश्मीर नेहरु से नाराज हो गए। उनका कहना था कि बहुसंख्यक मुसलमान उनका हिंदू राज्य डुबाने के पीछे लगे हैं और ऐसी स्थिति में डोगरा सेना ही हमें बचा सकती है, ऐसी कैफियत महाराज ने बेरि. जिन्ना की तरफ की। महाराजा हरिसिंह और बेरि. जिन्ना ने शेख अब्दुल्ला की प्रजा परिषद के आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया। फिर भी उस अग्निपरीक्षा से निकलकर शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर की प्रजा की एकजुट होने की भावना को भंग नहीं होने दिया। इस आंदोलन से कश्मीर की जनता भारत की तरफ आस्था से देखने लगी।

किसी भी हालात में कश्मीर का भारत में विलय नहीं होना चाहिए, यह लार्ड माउंटबेटन चाहते थे। अगर संभव हुआ तो कश्मीर पाकिस्तान को देना चाहिए या कश्मीर का सवाल बीच में ही लटका रहना चाहिए, क्योंकि उससे कश्मीर और उसके आस-पास के प्रदेश का उपयोग चीन, रुस और भारत के करने पर इन तीनों देशों के खिलाफ प्रचार करने के अवसर इंग्लैंड को मिलेंगे, ऐसी धारणा माउंटबेटन की थी। लॉर्ड माउंटबेटन ने कश्मीर के सम्बन्ध में नेहरु के साथ कभी बोलने की कोशिश नहीं की। फिर शेख अब्दुल्ला से एक सीढ़ी नीचे उतरकर कैसे वे बात कर सकते थे? माउंटबेटन के मतानुसार, 'कश्मीर पाकिस्तान में जाना चाहिए', इसी ताक में बेरि. जिन्ना थे। परन्तु इस सम्बन्ध में भारतीय नेताओं में से किसका मन परिवर्तित करना चाहिए, यह सवाल जिन्ना के सामने आया। उस समय उनको इस सवाल के बारे में वल्लभभाई पटेल बहुत ही करीब के लगे। बँटवारा और हैदराबाद के बारे में वल्लभभाई पटेल ने गांधी और नेहरु को न पूछते हुए माउंटबेटन की सहमति से एकतरफा निर्णय लिया था। शेख अब्दुल्ला के बारे में पटेल बैरभाव रखते थे। भारत में कश्मीर की जनता के आंदोलन की और नेहरु-अब्दुल्ला की दोस्ती की प्रशंसा होती थी, किन्तु वल्लभभाई पटेल ने इस सम्बन्ध में कभी भी उनकी प्रशंसा नहीं

की। इस बात से वल्लभभाई पटेल के मन पर चोट लगने वाली थी। माउंटबेटन ने इस स्थिति का फायदा उठाया और वल्लभभाई से दोस्ती की। दोनों की दिलजमाई होने से ऐसा स्वर निकला कि कश्मीर पाकिस्तान को दे दिया जाए! माउंटबेटन ने महाराजा कश्मीर को यह सोचकर सलाह दी कि महाराजा उस पर अमल करेंगे तो भारत का उस पर कोई आक्षेप नहीं रहेगा, ऐसी नीति उनकी थी। वल्लभभाई और माउंटबेटन की आधी सलाह (भारत में शामिल न होने की) महाराजा हरिसिंह ने मान ली और शेष आधी सलाह के लिए सर कॉरफील्ड की मदद ली। इसके पश्चात् कश्मीर स्वतंत्र, सार्वभौम और एकतंत्री राज्य घोषित करने का निर्णय महाराजा ने लिया। सत्ता-हस्तांतरण के बाद बँटवारा हुआ और स्वतंत्र भारत तथा आजाद पाक के बीच 'सार्वभौम कश्मीर' राज्य अस्तित्व में आया।

कश्मीर के विलय होने की प्रक्रिया

वल्लभभाई कश्मीर को भारत में विलय करने के लिए तैयार नहीं थे। इस कारण बेरि. जिन्ना ने 'सार्वभौम कश्मीर' पर लुटारू टोली की मदद से हमला कराया। इस जबर हमले के सामने महाराज हरिसिंह और उनकी डोगरा लस्करी पल्टन नाकाम हो गई। ऐसे समय में महाराजा के सामने दो ही विकल्प थे, एक तो पलायन करना चाहिए या किसी की शरण में जाएँ, किन्तु कश्मीर की जनता को ऐसा सोचना भी असंभव था। अपने परिवार की सम्पत्ति और प्रिय कश्मीर भूमि की रक्षा करना या उसके लिए बलिदान करना, इतना ही रास्ता शेष था। ऐसी कठिन परिस्थिति में शेख अब्दुल्ला ने नेशनल कॉन्फ्रेन्स की मदद से पाक के हमले को अपनी छाती पर झेला और श्रीनगर में पाकिस्तान के सैनिकों को रोक दिया। उनके इस शौर्यशाली प्रतिकार से कश्मीर को 48 से 72 घंटे का समय मिल गया।

पाकिस्तान के उत्तेजित टोलीवालों के कश्मीर पर हुए हमले से कश्मीरी मुस्लिम जनता के मन में पाकिस्तान के बारे में द्वेष और घृणा की भावना आई; और इसके विपरीत भारत के बारे में कृतज्ञता की भावना निर्मित हुई। कश्मीर को पाक में ढकेलने का प्रयास खत्म हो गया था और कश्मीर को स्वतंत्र रखने का मामला भी धोखे में था। ऐसी स्थिति में महाराजा ने कश्मीर को भारत में विलय करना और कश्मीर की रक्षा के लिए भारतीय सेना को आमंत्रित करना आवश्यक प्रतीत हुआ था। और हुआ भी वैसा ही। महाराजा के एक विलयनामा के अनुसार कश्मीर भारत में संलग्न हो गया।

कश्मीर के निर्माण के लिए जिम्मेदार कौन?

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व और बाद के इतिहास से एक बात स्पष्ट होती है कि भारत और पाकिस्तान का विभाजन केवल अंग्रेजों की नीति के कारण ही नहीं हुआ

था, बल्कि यहाँ की हिंदू सांप्रदायिक नीति के कारण हुआ था। केवल मुस्लिमों के प्रति नफरत और हिंदू राष्ट्र निर्माण की लालसा से बेरि. जिन्ना जैसा एक धर्मनिरपेक्ष और काँग्रेस का वरिष्ठ नेता, जिनका सपना अखण्ड भारत का था, उनका सपना छिन्न-भिन्न हुआ और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। इसके लिए हिंदू सांप्रदायिक शक्तियाँ ही पूर्णतः जिम्मेदार हैं। इसी हिंदू सांप्रदायिक शक्ति ने राष्ट्रीय नेता महात्मा गांधी का खून करने तक अपनी धर्मांधता की मंजिल पूरी की। इस सांप्रदायिक शक्ति ने बेरि. जिन्ना को भारत से अलग किया और शेख अब्दुल्ला केवल मुसलमान हैं, ऐसा सोचकर उनके कश्मीर को भारत से अलग रखा। आज भी कश्मीर की जनता भारत में आने के लिए तैयार नहीं है। इसका मूल कारण इस देश की हिंदू सांप्रदायिक शक्ति का मुसलमानों का जबर्दस्त विरोध करना है। कश्मीर को भारत से अलग रखने में कौन जिम्मेदार है? इसके लिए कश्मीर के महाराजा हरिसिंह, जो हिंदू रियासत के राजा थे और न सरकार वल्लभ भाई जैसा हिंदू सांप्रदायिक नेता जिम्मेदार था व उस समय अगर वल्लभभाई ने शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व का विरोध नहीं किया होता तो कश्मीर कब का अन्य रियासतदारों के जैसा भारत में शामिल हुआ होता! आज भी हिंदुओं की मानसिकता से निर्मित हुई कश्मीर की समस्या देश के सिर पर सवार है। इसलिए कश्मीर-समस्या पर विचार करते समय उसकी पृष्ठभूमि और मानसिकता पर विचार करना उतना ही महत्वपूर्ण होगा।

1. "If Hindu Raj does become a fact, it will, no doubt, be the greatest calamity for this country. No matter what the Hindus say, Hinduism is a menance to liberty, equality and fraternity. On that account, it is incompatible with democracy. Hindu Raj must be prevented at any cost."
   (Dr. Babasaheb Ambedkar writings and speeches, Vol.8, P.358)

2. "There is one thing which I think is very necessary in the working of democracy and it is this that in the name of democrary, there must be no tyranny of the majority over the minority. The minority must always feel safe that although the majority is carrying on the government, the morality is not being hurt, or the minority is not being hit below the belt."
   (Khairmode, Vol. II, P. 36-37)

अध्याय 3

भारतीय रियासतें और कश्मीर

> *व्यक्तिगत तौर पर मैं यह स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि इस देश में किसी विशेष संस्कृति के लिए कोई स्थान है, भले ही वह हिंदू संस्कृति हो, या मुस्लिम संस्कृति हो, या कन्नड़ संस्कृति हो, या गुजराती संस्कृति हो।*[1]
>
> **—डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर**

(डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, वाल्यूम 2, पृ. 195)

कश्मीर के सवाल की जड़ भारत की रियासतों के इतिहास में गढ़ी हुई है। 1765 में राबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में ईस्ट इण्डिया कंपनी की सत्ता भारत में स्थापित हुई। कंपनी के राज्य-विस्तार की नीति से 1858 तक जो उस समय के राज्य थे, बच गए, उनको भारतीय रियासतें कहते हैं। 19वीं सदी में वॉरेन हेस्टिंग्ज, रिचर्ड वेलस्ली, मार्केज ऑफ हेस्टिंग्ज और जेम्स डलहौजी का गवर्नर जनरल के रूप में कंपनी के निर्माण में मुख्य हिस्सेदारी थी। कंपनी ने सन्धि व करारनामे शुरु में मित्रता और समानता की भूमिका से किए, किन्तु 19वीं सदी से कंपनी का विकल्प ब्रिटिश शासन बना। उसके लिए कानून का कोई आधार नहीं था। उसके बाद समझौता करते समय जुल्मी कार्यभार में हस्तक्षेप करेंगे, ऐसी एक धारा प्रत्येक सुलह-पत्र में आने लगी। ब्रिटिशों को लगान चुकाते-चुकाते अनेक रियासतों की अर्थ-व्यवस्था बिगड़ गई थी। औरस पुत्र नहीं रहने पर राज्य कब्जे में लेने की नीति और 'सम्बन्धित राज्यों का प्रशासन ठीक नहीं है,' ऐसी स्थिति में उनका राज्य पूर्णतः अपने अधिकार में लेने की नीति ब्रिटिश शासन ने बनाई। इसलिए रियासतदारों में अस्थिरता पैदा हुई।

स्वतंत्रता के युद्ध का विश्लेषण

"ब्रिटिश शासन की राज्य-विस्तार की नीति 1857 के उठाव का एक प्रमुख कारण है" (मराठी विश्वकोष : 12, पृ. 435) बेरि. वि. दा. सावरकर इसे 'स्वतंत्रता युद्ध'

बतलाते हैं, जैसा मार्क्स-एंजल्स ने इसे भारत का 'प्रथम स्वतंत्रता युद्ध' बतलाया और "द फर्स्ट इण्डियन वार ऑफ इण्डिपेंडेंस" नाम से पुस्तक लिखी। सामाजिक क्रांतिकारी महात्मा ज्योतिबा फूले 1857 के विद्रोह का अनोखे ढंग से वर्णन करते हैं। महात्मा फूले अखंडादि काव्य रचना में कहते हैं-

'सत्यवक्ता होते यदि ब्राह्मणों में॥ तो ये भोगविलासी आए कहाँ से॥1॥
बोध पर वाणी आर्यों की अखंड॥ पेशवा ने द्रोह किया कैसा॥2॥

('महात्मा फूले रचनावली', पृ. 213)

महात्मा फूले अंग्रेजों का उद्देश्य बतलाते हैं-

'सत्ता तेरी रानीताई। हिंदुस्थानी सचेत नहीं॥
जिधर उधर ब्राह्मणशाही। आँखें खोलो तो सही॥
चारों ओर पंडितशाही। कुनबियों को स्थान नहीं॥

('महात्मा फूले रचनावली', पृ. 86)

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बारे में कई तरह से विश्लेषण किया गया है। इसमें महात्मा फूले का आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से किया हुआ विश्लेषण काफी सही और सत्य की खोज करने वाला लगता है। इस संग्राम के बारे में अंग्रेजों ने भी अपने ढंग से विश्लेषण किया है। लार्ड चार्ल्स जॉन कनिंग कहते हैं-

"1857 के संग्राम में बहुसंख्यक रियासतें तटस्थ रहीं, तो कुछ रियासतों ने प्रत्यक्ष रूप में अंग्रेजों को मदद की थी। उसमें निजाम, सिख और सिन्धिया आदि थे। इन्हीं रियासतों की मदद से ही आजादी के तूफान से कंपनी बची।"

('मराठी विश्वकोष' : 12 पृ. 412)

1857 के संग्राम के बारे में कई तरह से विश्लेषण हुआ। फिर भी सामाजिक दृष्टि से भी इस पर विचार कर सकते हैं। कंपनी के पहले के कुछ अधिकारियों ने सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए कुछ रियासतों को समाप्त करने की नीति अपनाई थी। उसके खिलाफ 1857 में रियासतदारों ने भयंकर विद्रोह किया। इस देश के रियासतदारों, जागीरदारों को अपने सामने झुकाने की हिम्मत कैसे आई, ऐसा सवाल सामने आता है। इस सवाल का जवाब ढूँढते समय यह बात ख्याल में आती है कि यहाँ की समाज व्यवस्था से त्रस्त हुई जनता ने विदेशियों को इस देश में पाँव रखने का रास्ता खोला। "मुसलमानों की सत्ता हिंदुस्तान में लाने के लिए जो हिंदुओं के बीच जाति कारण बनी, उसमें अछूत जाति विशेषतः महार, मांग व चमार हिंदुओं से त्रस्त थीं।"

(संदर्भ : 'भीमराव रामजी अम्बेडकर' चरित्र खण्ड-9, लेखक : चां. भ. खैरमोडे, पृ. 206)

अस्पृश्य जनता की वह मानसिकता 1857 के अंग्रेज विरोधी संग्राम में भी दिखाई दी। "1857 के धूमधाम में अंग्रेजों से इमान रखकर उनके समर्थन में जो सेना लड़ी, उसमें राजपूत, मराठे, सिख, गुरखा, अस्पृश्य, ईसाई, महार और चमार प्रमुख थी। केवल इन सैनिकों के शौर्य से ही अंग्रेजों का साम्राज्य विद्रोही फौज़ियों के चंगुल से सही सलामत टिक सका।" ('उक्त', पृ. 233) इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि भारत में मुसलमान और अंग्रेजों की सत्ता का आधार मजबूत करने के लिए अछूतों ने जो मदद की, वह उनके आत्मसम्मान का प्रयास था।

अछूत वर्ग ने अंग्रेज सत्ता से कितना भी इमान रखने का प्रयास किया, फिर भी उन्होंने अछूतों को विशेष रूप से न्याय नहीं दिया। 1857 के संग्राम में जो छूत (सवर्ण) और अछूत (अवर्ण) सेना की अधिक भर्ती थी, उनमें से छूत सैनिकों के मन में जातीय श्रेष्ठता की आग और बढ़ी। अछूत अधिकारियों के हाथ के नीचे कार्य करना और अछूतों के बनाए हुए वाद्य बजाना, यह धर्मभ्रष्टता है, ऐसा छूतों (सवर्णों) को लगने लगा। इसलिए इन दोनों जाति के सैनिकों में बैरभाव निर्माण हुआ। यह परिस्थिति ऐसी ही रही तो 1857 के संग्राम की पुनरावृत्ति तैयार होने की पार्श्वभूमि तैयार होगी और अपना साम्राज्य खतरे में आएगा, इस डर से अंग्रेजों ने हिन्दू फौजों की पुनर्रचना करने का निश्चय किया। उसमें स्पृश्य सैनिकों की तरफ अंग्रेजों का झुकाव हुआ और अस्पृश्य सैनिकों को इससे अनेक बार तकलीफ हुई। यह इतिहास प्रस्तुत करने का कारण यह है कि 1857 के संग्राम में रियासतदारों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया, फिर भी उस विद्रोह को दबाने के लिए अस्पृश्यों ने अंग्रेजों की जो मदद की, उस आधार पर 1857 के संग्राम के इतिहास का सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर अलग ही चित्र उभरते हैं।

कश्मीर रियासत को सर्वोच्च सम्मान

यह विद्रोह दबाने के बाद कंपनी विसर्जित हो गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गया। 1857 के विद्रोह के बाद रियासतों के दर्प को चूर कर उनका इस्तेमाल करने का प्रयास ब्रिटिशों ने किया। कंपनी और ब्रिटिश सरकार के कई गवर्नर और गवर्नर-जनरल में अमीर-उमराव घराने के होने से भारत के कई रियासतदारों के बारे में उनको आत्मीयता लगती थी। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिशों ने रियासतदारों को विशिष्ट दर्जा देने का प्रयास किया। महारानी विक्टोरिया ने 1858 के करारनामे में, इसके बाद राज्य का विस्तार न करने के, कंपनी के किए सब सुलह और समझौतों पर अमल करने तथा रियासतों के सभी अधिकार या हक़ कायम रखने का वचन दिया। शेष सभी भारतीय रियासतों को गोद लेने की स्वीकृति दी। उसके अनुसार कश्मीर के महाराजा गुलाबसिंह को अपना राज्य का विस्तार करने दिया गया। इस

नीति से स्वतंत्रता पूर्व भारत में 599 रियासतें अस्तित्व में आईं। लगभग दो बँटे पांच प्रदेश और एक चौथाई प्रजा रियासतें ब्रिटिश भारत में आईं। इस नीति से जम्मू-कश्मीर रियासत को 21 तोपों का (सर्वोच्च) सम्मान मिला।

रियासतों की स्वायत्तता का स्वप्न

तात्विक दृष्टि से अनियंत्रित राज्य सत्ता सभी रियासतों की विशेषता थी। उस पर प्रत्यक्षतः ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों का नियंत्रण रहता था। यह नियंत्रण करने का कार्य ब्रिटिशों का राजनैतिक विभाग करता था। 1858 के बाद राज्य का विस्तार रुक गया। फिर भी ब्रिटिशों के सार्वभौमिकता का अलिखित तत्व अधिक पक्का हो गया। ब्रिटिश राजसत्ता रियासतों के राज्य प्रशासन में, विशेषतः उनके कामकाज में बार-बार हस्तक्षेप करती थी। कश्मीर की रियासत में भी ऐसा ही हस्तक्षेप हुआ।

भारत के स्वतंत्रता का आंदोलन 20 वीं सदी में शक्तिशाली हुआ। उसी प्रकार रियासतों की प्रजा ने भी उनके अपने अधिकारों को महसूस किया। उसके मुताबिक ब्रिटिश नीति भी बदलने लगी। अंग्रेजों ने रियासतों का उपयोग भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को दबाने के लिए किया। बेगार और जुल्म के खिलाफ कुछ रियासतों में आंदोलन शुरु हुए। किन्तु रियासतों ने उन आंदोलनों को कुचलने का पूरा प्रयास किया। 'अखिल भारतीय रियासत प्रजा परिषद' की 1927 में स्थापना हुई। इस परिषद के माध्यम से रियासतों में चल रहे आंदोलनों को एक मंच मिला। साइमन कमीशन की रिपोर्ट और उस पर आधारित 1935 के कानून ने प्रांतीय आधार पर कुछ सत्ता देकर संघ राज्य की योजना बनाई। उस आधार पर हिंदू, मुस्लिम और रियासतों के अलग-अलग हित सम्बन्धों का विचार सामने आया। 1935 के कानून में रियासतों को संयुक्त राष्ट्र संविधान में सम्मिलित होने या न होने की स्वतंत्रता थी। सभी रियासतों ने कुछ शर्तें रख राज्य संविधान में शामिल होने से इंकार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि, 'भारत के सत्ता हस्तांतरण के समय इन रियासतों का अलग से संघ राज्य बनाना चाहिए', इस तरह की इच्छा चर्चिल आदि लोगों की थी। लिनलिथगो ने ब्रिटिश राजनीतिक नियंत्रण की दृष्टि से छोटे रियासतों का समूह निर्माण कर भविष्य में उन्हें शामिल करने की नीति अपनाई थी, ऐसे समय में दूसरे महायुद्ध में रियासतों ने अंग्रेजों को आर्थिक तथा फौजी मदद की। 'अंग्रेजों ने सत्ता हस्तांतरण किया तो अंग्रेज हमें स्वायत्तता तथा संरक्षण देंगे'—इस तरह के सपने रियासतें देख रही थीं।

3 जून, 1947 को वाइसराय लार्ड लुई माउन्टबेटन ने अंग्रेज भारत छोड़ेंगे, ऐसा जाहिर किया। ब्रिटिशों ने सार्वभौम सत्ता छोड़ने के बाद रियासतों की स्थिति 'जैसे थे' थी, चाहे वे स्वतंत्र रह सकते थे या भारत और पाक में से किसी एक

देश में शामिल हो सकते थे। रियासतों का सवाल खत्म करने के लिए केंद्रीय सरकार के गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में रियासत विभाग 5 जुलाई, 1947 को निर्मित किया। भारत के भौगोलिक क्षेत्र में रियासतों का भारत में शामिलीकरण, संरक्षण और विदेश सम्बन्ध इतना ही मर्यादित था। वाइसराय ने नरेन्द्र मण्डल की ओर से शामिलीकरण के बारे में एक समिति बनाई। सरदार पटेल ने इस प्रश्न को बड़ी चतुराई से सुलझाया। कुछ अपवाद छोड़कर 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत की बहुत-सी रियासतों ने करारनामे पर दस्तखत किए। उत्तर-सीमा पर जम्मू-कश्मीर की रियासत क्या करेगी, यह महत्वपूर्ण तथा नाजुक सवाल अनुत्तरित था।

कश्मीर सम्बन्धी 'जैसे-थे' नीति

महाराजा हरिसिंह उस समय कश्मीर की रियासत के प्रमुख थे। वह बहुत ही जातिय प्रवृत्ति के थे। उनके द्वारा किए गए अत्याचार के शिकार बहुसंख्यक मुसलमान थे। परंतु उन्होंने कश्मीर पंडितों को भी नहीं छोड़ा। उनकी डोगरा योजना के अनुसार उन्होंने राजपूत लोगों को प्रशासन में 60 प्रतिशत हिस्सेदारी दी। उद्योग-धंधे, व्यापार और खेतिहर सम्बन्धी मुसलमानों को कभी भी समान अवसर नहीं दिए। शैक्षणिक क्षेत्र में भी यह भेद-नीति कायम रखी। कश्मीर घाटी में रहने वाले मुसलमानों को छोड़कर उन्होंने व्यवसाय के लिए बाहर के हिंदुओं का प्रवेश मान्य किया। किन्तु मुसलमानों को उससे वंचित रखा। उन्होंने 25 जागीरों में से केवल दो जागीरें मुसलमानों को दीं।

('इकॉनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली' दिसंबर 21, 1991, पृ. 2952)

महाराजा हरिसिंह के सर्वस्तरीय अत्याचार से त्रस्त हुए मुस्लिम जनता ने 1931 में विद्रोह किया और आगे शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'ऑल जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस' लड़ाकू संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन के माध्यम से "शोषक के विरोध में शोषितों का न्याय के लिए संघर्ष है" ऐसा शेख अब्दुल्ला ने कहा। महाराज हरिसिंह के शैतानी शासन और शेख अब्दुल्ला के लोकशाही के तत्व पर भारत में मुक्ति के लिए जो संघर्ष चल रहा था, उसी समय 1947 को भारत देश ब्रिटिशों के नियंत्रण से मुक्त हुआ, साथ में पाक भारत से अलग हुआ। इस समय कश्मीर का अस्तित्व क्या रहेगा? यह सवाल सामने आया था।

कश्मीर में बहुसंख्यक मुस्लिमों की बस्ती है। पश्चिम पंजाब अर्थात् पाक की नदियों का उद्गम कश्मीर से है। संभावित आक्रमण से भारत की रक्षा करने के लिए कश्मीर का ढाल करके उपयोग कर सकते हैं और युद्ध के समय भारत को शिकस्त देने के लिए यह प्रदेश अपने कब्जे में रहेगा, इस उद्देश्य से पाक को कश्मीर

की जरूरत है। इसके विरोधी पाकिस्तान की निर्मिती से भारत की महत्वपूर्ण सीमा असुरक्षित है और कश्मीर का प्रदेश जाने के बाद संरक्षण की दृष्टि से भारत की उत्तर सीमा असुरक्षित रहेगी। इसलिए भारत को कश्मीर की जरूरत है। इसलिए इन दोनों ही देशों को ऐसा लगता है कि कश्मीर अपने नियंत्रण में आना चाहिए।

भारत को जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उस समय बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर भारत के पहले मंत्रिमंडल में थे। देश के हित के सम्बन्ध में कोई भी भूमिका लेने में डॉ. अम्बेडकर और सरदार पटेल का कुछ बातों में एकमत था। रियासतों के सवालों के सम्बन्ध में गृहमंत्री के नाते सरदार पटेल के हाथ में रियासतों सम्बन्धी अधिकार था। इसके सारे सूत्र भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल के हाथों में थे। भारत में सार्वभौमिकता का तिरस्कार करने वाली अनेक रियासतों को उन्होंने ठिकाने लगा दिया। सरदार पटेल चतुर राजनीतिज्ञ थे और वह कानून की सलाह डॉ. अम्बेडकर से लेते थे। हैदराबाद की रियासत को ठिकाने लगाने के लिए जो पुलिस कार्यवाही सरदार पटेल ने बड़ी हिम्मत से सफलतापूर्वक चलाई थी, उसके पीछे डॉ. अम्बेडकर का मौलिक सहयोग सरदार पटेल को मिला था। इसका परिणाम ऐसा हुआ कि शेष सब छोटी-मोटी रियासतों ने अपनी सार्वभौमिकता को छोड़ा और वे भारत में शामिल हो गए, किन्तु कश्मीर की रियासत इससे अलग रही।

कश्मीर का सवाल उस समय ताबड़तोड़ तरीके से हल नहीं हुआ। उसके पीछे बहुत से कारण हैं। भौगोलिक दृष्टि से कश्मीर भारत और पाक की सरहद पर स्थित है। कश्मीर का राजा हिन्दू है और अधिकतर जनता मुस्लिम है। इसलिए यह सवाल हल करने के लिए कश्मीरी जनता की सम्मति लेना श्रेयस्कर रहेगा, ऐसा भारतीय मंत्रिमंडल का मत बना था। यह सवाल वैसा ही अनुत्तरित रख 'जैसे थे' समझौता किया गया। यह समझौता करने के पहले डॉ. अम्बेडकर इस मत के थे कि कश्मीर का सवाल निजाम के रियासत जैसा हल करना चाहिए, लेकिन मंत्रिमंडल ने इसे नजरअंदाज किया। अगर डॉ. अम्बेडकर का कहना, तत्कालीन मंत्रिमंडल ने सुना होता तो आज कश्मीर की समस्या हमेशा के लिए हल हो गई होती।

पाकिस्तान के पंजे से कश्मीर की मुक्ति

कश्मीर के बारे में भारत की नीति 'जैसे थे' समझौते के मुताबिक तय की गई थी। फिर भी पाकिस्तान चुप नहीं बैठा था। कश्मीर-पाकिस्तान सीमाप्रांत के टोलीवालों ने कश्मीर के कुछ गांवों पर छुपकर हमले किए। इस बारे में भारत ने पाक सरकार से शिकायत की थी, लेकिन पाकिस्तान ने इस तरफ से चुप्पी साध ली। इस विकट परिस्थिति में कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला ने मध्यस्थता की, लेकिन उनका प्रयास

भी असफल रहा। सरहद के उस पार के टोलीवालों ने जम्मू-कश्मीर पर शुरु में मामूली हमला किया, लेकिन 31 अगस्त, 1947 को उन्होंने जम्मू-कश्मीर के सरहद में आने वाले गांवों पर जबर्दस्त हमला बोला। इस समय भी कश्मीर के महाराजा अकर्मण्य थे। 'अपने राज्य में कुछ भी हुआ नहीं', ऐसा समझकर वे भोग-विलासी जीवन जी रहे थे।

22 अक्तू. 1948 को पाकिस्तान ने पुनः सीमाप्रांत के टोलीवालों को उत्तेजित किया और कश्मीर पर एक और जोरदार हमला किया। शेख अब्दुल्ला के स्वयंसेवकों ने निर्भीकता से हमलों को रोकने का प्रयास किया। परिस्थिति अनियंत्रित थी। कश्मीर के अस्तित्व को खतरा हो गया था। तब महाराजा के ऐशो-आराम में रूकावट पैदा हो गई और वह घबरा गया। उसने जम्मू में पलायन करके भारत से शामिलनामा करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और इस आपातकाल की स्थिति में भारत से मदद करने की मांग की।

जम्मू-कश्मीर पर खतरे की और कठिनाइयों की सूचना भारत सरकार को मिलते ही महाराज के शामिलनामे के अनुसार सैनिकों की कुमुक भेजने का निर्णय सरदार वल्लभभाई पटेल ने डॉ. अम्बेडकर से सलाह-मशविरा कर लिया। डॉ. अम्बेडकर ने टोलीवालों के साथ सामना कैसा करना चाहिए, इस बारे में विस्तार से बतलाया। टोलीवालों से सीधा सामना करना खतरनाक और भयंकर कार्य है, उनसे गुरिल्ला-पद्धति से युद्ध करना संभव है, इसके बारे में पटेल को समझ दी। टोलीवालों की मदद से जम्मू-कश्मीर हड़पने का इरादा पाकिस्तान का था। इस परिस्थिति में कश्मीर को सैनिकों की मदद पठानकोट से खुस्की के मार्ग से भेजने में विलंब होने की संभावना थी, इसलिए कश्मीर मुक्ति-युद्ध के लिए महार बटालियन को यह कार्य सौंपना चाहिए, ऐसी निर्णायक सलाह डॉ. अम्बेडकर ने पटेल को दी। महार बटालियन के शूर सैनिकों को तुरन्त विमान से भेजने के अलावा और अन्य रास्ता न था। यह बात सभी की समझ में आई और उस पर शीघ्र अमल हुआ।

महार बटालियन के शूर सैनिकों ने कश्मीर-मुक्ति के लिए जो लड़ाई लड़ी, उससे भारत के इतिहास में एक गौरवशाली पर्व जुड़ा है।

1. "Personally myself, I say openly that I do not believe that there is any place in this country for any particular culture, whether it is Hindu culture, or a Mohammadan culture, or a Kanarese culture or a Gujrati culture."
('Dr. Babasaheb Ambedkar writings & speeches', Vol.2, P-195)

अध्याय 4

कश्मीर मुक्ति और महार बटालियन

> *ब्राह्मण और बनिया कभी भी आजादी के लिए न तो लड़े और न मरे। हालांकि वे ऐसे भाग्यशाली हैं जिनके हिस्से में अब आजादी की उपलब्धियाँ रही हैं। मुझे यह जानना है कि उनमें से कितने लोग पिछले युद्ध में मरे हैं? उनमें से कितने सेना में हैं? मगर हमारे लोग सेना में भर्ती होनेवालों में पहले होंगे, सेना में वे अपने कार्य को भलीभाँति अंजाम देंगे, जैसा कि पहले भी वे अपनी जिम्मेदारी निभा चुके हैं।*[1]
> *(29-10-1951)* —डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' : खंड दसवाँ, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 202)

'भारत का हजारों वर्षों का इतिहास भारत पर हुए आक्रमणों का इतिहास है। और प्रत्येक आक्रमण में भारत की हार हुई, इस वस्तुस्थिति को स्वीकार करना ही चाहिए,' यह विचार भारत के हमारे पूर्व रक्षामंत्री मान. यशवंतराव चव्हाण ने व्यक्त किए हैं। '1962 के मध्य में नेफा क्षेत्र में सेना ने बहादुरी से आक्रमण को रोका। यह हमारे पिछले हजार वर्षों के इतिहास की पहली घटना है।' ('भूमिका' : यशवंतराव चव्हाण, पृ. 27) उन्होंने आगे यह भी कहा कि, "भारत का नया इतिहास लिखा जा रहा है। वह केवल स्याही और कलम से नहीं लिखा जाता बल्कि तलवार और खून से लिखा जा रहा है। यह सच्चा आधुनिक इतिहास है। हमें ऐसा ही इतिहास बनानेवाला भारत अपेक्षित है।" ('उक्त', 27)

डॉ. अम्बेडकर और महार बटालियन

भारत के पूर्व संरक्षा मंत्री और भारत के इतिहास की अच्छी समझ रखनेवाले माननीय यशवंतराव चव्हाण ने नेफा क्षेत्र में सन 1962 में पिछले हजार सालों के इतिहास में आक्रमणों को खदेड़ने का जो उल्लेख किया है, वह एकदम सच है।

1962 में लद्दाख और नेफा क्षेत्र की लड़ाई में जिन्होंने तारीफे काबिल साहस का परिचय दिया है उस बटालियन के नाम का उल्लेख चव्हाण ने यूँ ही नहीं किया

है। तलवार और खून से लिखा गया भारत के सही इतिहास को क्या नष्ट किया जा सकता है?

भारत के राष्ट्रपति ने, नेफा के युद्ध में जिस बटालियन ने साहस दिखलाया, और जिस बटालियन का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया, वह है-महार बटालियन! नेफा क्षेत्र की लड़ाई में महार बटालियन के शौर्य की ओर ध्यान दिया जाए तो भी यशवंतराव चव्हाण का कहना अर्धसत्य ही माना जाता है। क्योंकि इससे पहले भी महार बटालियन ने भारत के शौर्य का इतिहास अपनी तलवार और खून से लिखा है। वह इतिहास है 1947-48 के कश्मीर के युद्ध का। इसलिए चव्हाण के बयान की उक्त बात गलत साबित होती है। पिछले हजार वर्षों में आक्रमणों को सफलतापूर्वक रोकने का पराक्रम कश्मीर के युद्ध में हुआ, (नेफा में नहीं) और वह किया है इस देश की महार बटालियन ने।

तलवार और खून से लिखा जा रहा इतिहास सही में आधुनिक इतिहास हो तो महार सैनिकों के द्वारा निर्मित इतिहास को नए ढंग से लिखने की आवश्यकता है। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने अपना ग्रन्थ 'भारत में सेना' (Army in India) लिखकर अगर पूरा किया होता तो इस इतिहास का उन्होंने निश्चित ही उल्लेख किया होता। महार बटालियन के बनने से पहले भी उनके पराक्रम का इतिहास रहा है। मुगलों, पेशवाओं और अंग्रेजों के काल में भी उन्होंने समय-समय पर अपना पराक्रम दिखलाया। सातवीं शताब्दी में भारत में जो विदेशी चीनी यात्री ह्यू-एन-त्सेंग आया था, उसने भी महाराष्ट्रीयन सैनिकों के शौर्य की प्रशंसा की। शिवाजी के धर्मनिरपेक्ष राज्य-निर्माण का आधार-स्तंभ भी महार सैनिक थे। सिदनाक, रायनाक के उत्तराधिकारी महार सैनिकों को आधुनिक युग में नई चेतना देनेवाला एक राष्ट्रनेता मिला, और वह थे बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर! इस तरह का उल्लेख महार बटालियन के निर्माण संबंधी इतिहास में है—

> "जुलाई, 1941 के आखिर में वाइसराय ने अपनी एक्जीक्यूटिव कौंसिल का विस्तार कर रक्षा कमेटी का गठन किया था। डॉ. अम्बेडकर, जो हमेशा से ही रक्षा के मामलों में गहरी रुचि लेते रहे थे और बड़ोदा राज्य में रक्षा सलाहकार समिति में लेफ्टिनेंट के पद पर कम उम्र में उनकी नियुक्ति हुई थी। तब उनके भीतर की उद्वेलित भावनाओं ने उनको कुछ करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कमान्डर-इन-चीफ से महार लोगों की ओर से कहा, जिसमें वे सफल हो गए। इस तरह सितम्बर, 1941 में महार बटालियन का पुर्नगठन हुआ"[2]

महार बटालियन का गुण-गौरव

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के प्रयास से बनाया हुआ महार बटालियन का इतिहास देश-गौरव का और शौर्य का इतिहास है। स्वतंत्र भारत में इस बटालियन के द्वारा किए गए कार्य बेहद मौलिक हैं। इसीलिए पूर्व राष्ट्रपति वी. वी. गिरी ने 1970 में इस बटालियन का ध्वज फहराते हुए इसकी प्रशंसा की थी। उसमें इन्होंने इस बटालियन के महत्व की संक्षेप में चर्चा की। वे कहते हैं-"15 अगस्त, 1947 को भारत के स्वतंत्र होने के बाद पाकिस्तान से भारत में हुए शरणार्थियों को लाने में और कोरिया, कांगो आदि राष्ट्रों में शांति कायम करने का कार्य इस रेजीमेंट ने किया और 1947-48 के कश्मीर-युद्ध में, 1961 के गोवा मुक्ति-संग्राम में, 1962 के लद्दाख और नेफा संग्राम में और 1965 के कच्छ, सियालकोट व लाहौर के युद्ध में महार सैनिकों ने अनेक पराक्रम दिखलाए।"

महार बटालियन के शौर्य के इतिहास की चर्चा करने की यहाँ जरूरत नहीं, परंतु इस बटालियन के शूर सैनिकों ने कश्मीर की मुक्ति के लिए जो पराक्रम दिखलाया, वह देशभक्ति का प्रेरणादायक इतिहास है। "उन्होंने (महार बटालियन) कश्मीर के युद्ध में इतनी बहादुरी दिखलाई, कि सेना अधिकारियों ने और स्वयं सरसेनापतियों ने कहा है कि महार सैनिक हिंदी सेना में बेहद साहसी योद्धा हैं" इस तरह के गौरवोद्गार कई बार व्यक्त किए हैं। (खैरवाड, खंड 9, पृ. 276) महार बटालियन ने कश्मीर-मुक्ति के लिए जो संग्राम किया, वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसलिए उस इतिहास की ओर नजर दौड़ाना जरूरी हो जाता है।

कश्मीर की रणभूमि पर इस बटालियन के वीर सैनिकों ने जो अभूतपूर्व विक्रम दिखलाया, उसका उल्लेख महार बटालियन के इतिहास में बहुत गौरव के साथ आया है, वह इस प्रकार-

> "जम्मू और कश्मीर में 18 माह रहकर महार बटालियन ने जो भूमिका निभाई, कश्मीर अभियान के इतिहास में विशेष तौर से रेजीमेंट में, वह गौरव के रूप में रहेगी। प्रत्येक सिपाही ने इस अभियान में एक दूसरे से बढ़कर साहस दिखलाया। महार बटालियन के अलावा और कौन ऐसा होगा, जो आदर और सम्मान के साथ याद किया जाएगा।"[3]
>
> ('द महार एम. जी. रेजीमेंट', पृ. 34)

कश्मीर-मुक्ति के लिए संघर्ष

कश्मीर-मुक्ति के लिए महार बटालियन के द्वारा किए गए इतिहास का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है—

पाकिस्तान ने 31 अगस्त, 1947 को जम्मू और कश्मीर की सीमा के एक गांव पर जबर्दस्त हमला किया, परंतु उसमें वे नाकामयाब रहे। 22 अक्तूबर, 1948 के दिन पाक ने फिर से हमला किया। सीमाप्रांत की टोली ने चेतावनी दी और कश्मीर पर एकदम हमला करने का प्रयास किया।

युद्ध के असहाय क्षणों में जम्मू-कश्मीर के संकट का समाचार जब भी भारत सरकार को मिला, उस समय महाराज की सन्धि के अनुसार वहाँ जल्दी ही सैनिक भेजना आवश्यक था, उस समय सरदार पटेल ने डॉ. अम्बेडकर से सलाह-मशविरा किया। डॉ. अम्बेडकर ने परिस्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए तत्काल कार्यवाही करने का निर्णय लिया। पाकिस्तान के द्वारा भेजे हुए सैनिकों की टोली का सामना करना खतरे से खाली नहीं था। इनसे आमने-सामने का युद्ध करना असंभव है, यह डॉ. अम्बेडकर को महसूस हुआ। कश्मीर के सैनिकों को मदद पठानकोट से खुस्की के मार्ग से भेजने में बहुत समय लग सकता था। इसलिए इस आपातकाल में सैनिकों को विमान से भेजना चाहिए, यह सलाह डॉ. अम्बेडकर ने दी। इस युद्ध के लिए कौन से सैनिकों को भेजना चाहिए, यह सवाल जब सामने आया, तब डॉ. अम्बेडकर ने मंत्रिमंडल को सलाह दी कि आमने-सामने के युद्ध में तथा घुमाफिरा कर युद्ध करने में महार सैनिक कुशल हैं। इसलिए महार बटालियन को कश्मीर में तुरंत भेजना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर की यह सलाह मंत्रिमंडल ने मानी और 27 अक्तूबर, 1947 में पहली महार बटालियन को कश्मीर में लड़ाई के मोर्चे पर जाने का आदेश मिला। महार बटालियन की एक टुकड़ी कश्मीर में और दूसरी जम्मू में विमान से भेजी गई। जम्मू से वह कंपनी तीन दिन के बाद नौशेर को (वायव्य सरहद का क्षेत्र) भेजी गई। तीसरी कंपनी 4 दिसंबर को जम्मू पहुँची। यह जो बटालियन थी, वह कश्मीर व जम्मू रणभूमि पर लगातार 18 माह लड़ती रही। पूंछ, कोटली, झांगार और नौशेर के बर्फ से ढके रणक्षेत्र में और ऊँचे हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में महार सैनिकों ने रात-दिन 18 माह जूझते हुए टक्कर दी और कश्मीर की रणभूमि पर अभूतपूर्व विक्रमी विजय दिलाने का रिकार्ड कायम किया।

महार बटालियन के पराक्रम की विजयगाथा

कश्मीर की रणभूमि में महार बटालियन के जवानों ने पराक्रम दिखाए, उस सम्बन्ध में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के एक लेख में एक समाचार प्रकाशित हुआ।

कश्मीर में पराक्रम

"दिसंबर, 1947 के कश्मीर-युद्ध में महार रेजीमेंट की बटालियन ने निष्ठा और बहादुरी से अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए न मिटनेवाला यश प्राप्त किया।

झंगार के युद्ध में इस बटालियन ने जो भूमिका निभाई, वह भारतीय सेना के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखी जाएगी।

24 दिसंबर, 1947 को चार हजार से छह हजार की संख्या में दुश्मन ने झंकार के पास हम पर हमला किया, यह हमला भारी तोपों और छोटे आर्म्स फायर से लैस था। दुश्मन की फौज को देखकर ऐसा लगता था कि टोलीवालों के कत्लेआम को नहीं रोका जा सकता। लेकिन महार बटालियन अपनी जगह साहस के साथ अडिग थी। सैकड़ों की संख्या में महार मशीन गनर्स का जब विनाशकारी गोला-बारूद खत्म हो गया तो उन्होंने दुश्मन के साथ आमने-सामने आकर लड़ाई लड़ी। उनकी बेजोड़ वीरता और प्रतिबद्धता ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।"[4]

('द टाइम्स ऑफ इंडिया', सण्डे, 26-10-52)

कश्मीर-मुक्ति के लिए विमान से जो महार बटालियन जल्दी भेजी गई थी, उस समय पाक व टोलीवाले 12 मील दूर बारामुल्ला गाँव में लूटमार करने में लगे हुए थे। उन्होंने वहाँ की जनता की जायजाद लूटी और बलात्कार भी किए। इसके अलावा मानवता को लज्जित करनेवाले अनेक प्रकार के कार्य किए। वहाँ की तमाम जनता इन टोलीवालों के अत्याचारों से भयभीत हो गई थी और 24 घंटे में भारत की ओर से अगर मदद न मिलती तो सारे कश्मीर प्रदेश को पाकिस्तान अपने कब्जे में ले लेता। परंतु पाकिस्तान का जो कश्मीर को कब्जे में लेने का आह्वान था, उसे महार बटालियन ने उतनी ही ताकत से अस्वीकार किया था।

महार बटालियन श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरी और क्षणभर भी विश्राम न लेकर वह फौज श्रीनगर की सीमा पर आई। टोलीवाली पाक फौज श्रीनगर की सीमा के नजदीक आ रही थी। महार बटालियन ने एकदम से हमलावरों पर आक्रमण कर उन्हें पीछे धकेल दिया। पाकिस्तानी व टोलीवालों पर महार बटालियन का अचानक सुरक्षात्मक हमला होते ही वे बौखला गए। लूटमार व बलात्कार करनेवाले दुश्मन की फौज को महार बटालियन के सैनिकों ने उन्हें उनकी औकात बतला दी। इस अचानक हमले के कारण उसके विरोधी कितनी संख्या में होंगे, इसका टोलीवालों को अनुमान नहीं हो सका। महार बटालियन में उस समय इतनी वीरता थी कि वह टोलीवालों को लड़ते-लड़ते जम्मू-कश्मीर घाटी तक ले गई।

जम्मू-कश्मीर की रणभूमि में 'झांगर' का युद्ध बहुत महत्वपूर्ण है। इस रणक्षेत्र में शत्रु के 6 हजार सैनिकों से महार बटालियन के केवल 50 सैनिक लड़ रहे थे। हवलदार रावू कांबले और नाईक बारक्या कांबले ने नेतृत्व किया। इन दोनों ने शत्रु पर गोलियों की जोरदार वर्षा की। गोलियों की वर्षा कहाँ से हो रही है, यह जब शत्रु के ध्यान में आया, तब ये दोनों जिस इमारत की आड़ में से दुश्मन पर हमला कर रहे थे, उसी इमारत को शत्रु पक्ष ने आग लगा दी और दोनों को पकड़ कर

उनका सिर कलम कर दिया। ऐसी हालत में भी उन दोनों के हाथ में जो मशीनगन थी, वह अपना कार्य चार-पांच सेकंड करती रही। इन दोनों वीरों के नाम महार बटालियन के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखे गए हैं। झांगर के संग्राम में बटालियन का जो नुकसान हुआ, उसका बदला उन्होंने नौशेर में 6 फरवरी, 1948 को हुए युद्ध में लिया। यह लड़ाई नाईक कृष्णा सोनवणे और पुंडलिक महार के नेतृत्व में हुई थी। इन दोनों ने एक हजार शत्रु सैनिकों को एक ही वार में मौत के घाट उतार दिया। यह उनके शौर्य का ही कमाल था।

जम्मू-कश्मीर के रण-संग्राम में जिन वीरों ने अपना शौर्य दिखलाया, उनमें से 6 को लष्करी खिताब (पुरस्कार) मिले। नायक कृष्णा सोनवणे को 'महावीर चक्र' प्राप्त हुआ, तो हवलदार अमृत गांबरे, धोंडू जाधव, नायक आबा किरतकुड़े, नायक बलीराम सालवी, पुंडलिक महार को 'वीरचक्र' मिले। इस बटालियन को युद्ध के बाद जम्मू-कश्मीर से लौटने के पहले दिन मेजर जनरल के. एस. थिमय्या ने एक समारोह में विदाई दी। उस समय थिमय्या जी का भाषण महत्वपूर्ण रहा और बटालियन ने जम्मू-कश्मीर के संग्राम में जो वीरता दिखलाई, उसके इतिहास को उन्होंने विशेष तौर पर बतलाया। जो इस तरह से ह—

> ''महार एम. जी. बटालियन के अधिकारियों और सैनिकों, आज आप सभी यहाँ भारत जाने के अवसर पर इकट्ठा हुए हो। अक्तूबर, 1947 के अंत में आप जम्मू क्षेत्र में आए थे और पैदल सेना के सहयोग से आपने सारे जम्मू और कश्मीर में विभिन्न अभियान छेड़े। देश की जलवायु के कारण जब मशीनगनों का अच्छा उपयोग होता है, तब आप पर विशेष जिम्मेदारी थी। परिणामस्वरूप इस बड़े क्षेत्र में आप सैनिकों, प्लाटून और यहाँ तक गन टीम आदि के रूप में जमे हुए थे।
>
> जम्मू और कश्मीर राज्य में जो भी लड़ाई लड़ी गई, उनमें आपने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। और पहाड़ियों तथा घाटियों के आसपास तुम्हारी बटालियन का नाम लंबे समय तक गूँजता रहेगा। दूसरे सभी यूनिट के चले जाने के समय आपकी जरूरत थी। पराक्रम, हिम्मत और धैर्य के उच्चतम अर्थ में आपके सैनिक युद्ध की परीक्षा में खरे उतरे।
>
> आप सब सफल हों, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ।''[5]

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' : खंड 9, चां. भ. खैरमोड, पृ. 282-283)

महार बटालियन का प्रेरणा स्थान

जम्मू-कश्मीर को बचाने के लिए महार बटालियन ने जो कार्य किए वे देश गौरव और राष्ट्रभक्ति में आते हैं। उसके बीच में इतनी ऊर्जा के निर्माण करने का एक ही कारक था,

जो डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर थे। इस युद्ध क्षेत्र में मराठे और महार जवान जोरदार लड़ाई लड़े। उनकी स्फूर्ति के लिए मराठे जवानों ने "हर-हर महादेव" व "छत्रपति शिवाजी महाराज की जय" के नारों की गर्जना कर शत्रु पर हमले किए। महार जवान भी गर्जना करते थे। लेकिन उनके लड़ने के लिए स्फूर्तिदायक एक ही प्रभावी गर्जना थी, 'जयभीम'!

छत्रपति शिवाजी महाराज व डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर को अपने-अपने देवता मानकर सैनिकों ने जम्मू-कश्मीर की लड़ाई जीती। और जम्मू-कश्मीर का प्रांत, बाकी का जहाँ तक कश्मीर प्रदेश था, वह दुश्मन से मुक्त किया और भारत में वह प्रदेश कश्मीर की प्रजासत्ता सरकार के नियंत्रण में दिया। आज जम्मू-कश्मीर का प्रदेश भारत के स्वामित्व में है। उसका सारा श्रेय महार बटालियन की शूरता को जाता है, साथ ही इस लड़ाई के लिए जिन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और मंत्रिमंडल को उचित सलाह दी, उन डॉ. अम्बेडकर को भी जाता है।

1. "Brahman and Baniya has never, died for freedom although they are the only fortunate who are deriving benefit now. Let me know how many of them have died in the last war ? How many of them are in the army ? If there is concription our people will be the first to go to the army. They will do their duty as they have done previously]" (29-10-1951)

   (Khairmode, vol. 10, P. 202)

2. "Towards the end of July 1941, the Voiceroy expanded his Executive Council and set up a Defence Committee. Dr. Ambedkar, who had always taken keen interest in defence affairs and as a young man had joined the Baroda State. Force as a lieutenant was appointed on the defence Advisory Committee. Dr. Ambedkar then exert presure from inside. He spoke the Commander-in-chief on behalf of the Mahars and his perseverance succeeded. Government sanction was accorded in september 1941 to raise a Mahar Battalion."

   (Ibid, vol. P.)

3. "The part played by the Bn during 18 months stay in Jammu and Kashmir will go down in the History of KASHMIR operations in general and the Regiment in particular. Each coy surpasses the other in the glorious work performed in its respective theatre of operations. More than anybody else the Infantry Bn to which the sections and platoons were attacked remember with affection and gratitude the work MAHARS had done alogwith them." (The Mahar M.G. Regiment, Page 34)

4.**HEROISM IN KASHMIR**

"In the Kashmir War in December, 1947 a battalion of the Mahar Regiment earned undying fame by its bravery and devotion to duty. The part which this battalion played in the battle of Jhangar will be written in the golden letters in the history of the Indian Army.

On December 24, 1947, enemy numbering between four to six thousand attacked our position near Jhangar, the attack being premeded by heavy morter and small arms fire. It looked as if nothing could stop the onslaught of the tribesmen, but the Mahars held their posts which matchless courage. In the hundreds of tribesmen were moved own by the devastating fire of the Mahar Machine-gunners who, when their ammunition was exhausted, fought the enemy in a hand-to-hand battle.

The bravery of this Battalion was recognised by the award of one Mahavir Chakra and five Vir-Chakras to its men. Their matchless courage and devotion to duty played a most important part in turning the tide of the battle at a critical moment."

('The Times of India', Sunday-26.10.52)

5. "Officers and men of I MAHAR MG Bn. You are assembled here today on the eve of your departure for India. You arrived in the JAMMU area at the end of Oct. 1947 and operated through out JAMMU and KASHMIR on various roles in support of the Infantry. Due to the nature of the country when Machine Guns are found to be of great use. There was a great demand on you by all the Infantry Comands with the result that you have been split up into coys, platoons and even gun-teams throughout this wide area.

You have been taken prominant part in all the battles that have been fought in JAMMU and KASHMIR state and the name of your Bn will resound through the hills and valleys for a long time to come. Whereas all other units have been relieved some time or other in forward area during the course of the whole of these operations, your detachments have had to stay put wherever they were in action without relief and it speaks very high for your reputation as a fighting unit. Your men have stood the test of war and on all occasions behaved with the highest sense of gallantry, courage and endurance.

I wish you all the best of luck and God-speed."

(Khairmode, vol.9, P. 282-283)

अध्याय 5

विदेश-नीति और कश्मीर-समस्या

जब मैं विदेश-नीति के बारे में सोचता हूँ तो मुझे बिस्मार्क और बरनॉर्ड शॉ की कही गई बातें याद आती हैं। बिस्मार्क ने कहा था, 'राजनीति आदर्शों का नहीं बल्कि संभव होने का जुआ है।' बरनॉर्ड शॉ ने भी कहा था-"आदर्श विचार अच्छे होते हैं लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत अच्छे विचार कभी-कभी बहुत खतरनाक भी होते हैं।" हमारी विदेश-नीति विश्व के इन दोनों महापुरुषों के इन विचारों के पूर्णतः विरोधी रही है। —डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' : खंड दसवाँ, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 111)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने 11 अक्तूबर, 1951 को नेहरु मंत्रिमंडल में अपने विधिमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया था। इस त्यागपत्र का प्रमुख कारण 'हिंदू कोड बिल' था। "हिंदू कोड बिल पास हो जाने के बाद भी मैं त्यागपत्र देनेवाला था। लेकिन मुझे लगता नहीं कि यह बिल पास होनेवाला है। इसलिए मैं त्यागपत्र दे रहा हूँ।" (खैरमोडे ख. 10, पृ. 73) ऐसा स्पष्टीकरण डॉ. अम्बेडकर ने किया था। फिर भी उनके त्यागपत्र का एक यही कारण नहीं था बल्कि कश्मीर का सवाल और नेहरु की विदेश-नीति भी था। त्यागपत्र के अन्य कारण निम्नलिखित हैं—

1. मंत्रिमंडल के अंतर्गत महत्वपूर्ण विभाग से मुझे वंचित रखा गया।
2. अछूत समाज की समस्याओं की ओर सरकार ने जानबूझकर लापरवाही की।
3. कम्युनिस्ट चीन को आवश्यकता से अधिक महत्व देना और उससे अमेरिका का आहत होना, इस तरह की नेहरु सरकार की विदेश-नीति मुझे कतई पसंद नहीं।
4. कश्मीर के सवाल पर नेहरु के द्वारा बनाई गई पर्दे के पीछे की नीतियाँ मुझे पसंद नहीं; क्योंकि वे मंत्रिमंडल से सलाह नहीं करते थे।
5. रूढ़िवादी हिंदुओं के डर से नेहरु ने हिंदू कोड बिल को एक कोने में रख दिया। यह मुझे पसंद नहीं।

यह पाँच कारण डॉ. अम्बेडकर के त्यागपत्र के पीछे थे।

कश्मीर की समस्या पर डॉ. अम्बेडकर की भूमिका

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने अपने त्यागपत्र में विदेश-नीति और कश्मीर की समस्या के संदर्भ में जो प्रश्न उठाए, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। डॉ. अम्बेडकर उसमें कहते हैं-

> "उक्त समस्या पर यह तीसरा विचार मेरे लिए असंतोष का कारण नहीं है, बल्कि विदेश-नीति के तहत यह वास्तव में चिंता का विषय है। कोई भी, जो हमारी विदेश-नीति का पालन करता रहा हो या उसे मानता रहा हो और भारत के बारे में दूसरे देशों के नजरिये को भी जिसने समझा हो, अचानक हुए इस परिवर्तन से वह अनजान नहीं होगा। 15 अगस्त, 1947 को जबकिं हमने आजाद देश के रूप में अपने जीवन की शुरूआत की, उस समय कोई भी देश हमें द्वेषभाव से देखनेवाला नहीं था। विश्व में प्रत्येक देश हमारा मित्र था। आज केवल चार वर्ष बाद ही सभी देशों ने हमसे किनारा कर लिया। हमारा कोई मित्र ही नहीं रहा है। सच बात तो यह है कि हम स्वयं अपने खिलाफ हो गए हैं।
>
> राज्य की वार्षिक आय के रूप में हमें 350 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। जिसमें से केवल सेना के रख-रखाव पर हमने 180 करोड़ रुपये खर्च कर डाले। यह एक बड़ा खर्च है। जिसका मुश्किल से कोई उदाहरण हो। यह बड़ा खर्च हमारी विदेश-नीति का सीधा परिणाम है। जो हमें स्वयं ही भुगतना पड़ता है, क्योंकि हमारा कोई ऐसा मित्र नहीं है जिससे आपात्काल में हम किसी मदद की आशा रखें। मैं स्वयं यह सोच-विचार कर आश्चर्य में हूँ कि क्या विदेश-नीति का यह सही ढंग है?
>
> पाकिस्तान के साथ हमारा झगड़ा हमारी विदेश-नीति का ही एक भाग है। पाकिस्तान से हमारे सम्बन्धों में दरार आने के दो कारण हैं। पहला कश्मीर और दूसरा पूर्व बंगाल में हमारे लोगों की स्थिति। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि हमारा पूर्वी बंगाल से कहीं गहरा सम्बन्ध है। जबकि हमारे लोगों की स्थिति असहिष्णुता की है, ऐसा अखबारों से लगता है। ऐसा होते हुए भी हमने अपना सब कुछ कश्मीर के विषय पर दाँव पर लगाया हुआ है। इसके बावजूद मेरी मान्यता यह है कि हम अवास्तविक मुद्दे पर ही लड़ रहे हैं। जिस मुद्दे पर हम लड़ रहे हैं, यह निश्चित करने में कि कौन सही है और कौन गलत, इस पर हमने अपना अधिकांश समय गवाँ दिया है। मेरे अपने विचार में वास्तविक विषय यह नहीं हो कि सही कौन है, लेकिन सही क्या है, यह होना चाहिए। इस मुख्य सवाल को लेते हुए मेरा हमेशा से यह मानना रहा है कि कश्मीर का विभाजन कर देना चाहिए। हिंदू और बुद्धिस्ट भाग भारत को और मुस्लिम

आबादीवाला क्षेत्र पाकिस्तान को दे देना चाहिए। कश्मीर के मुस्लिम आबादीवाले भाग से वास्तव में हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यह विषय तो कश्मीर के मुस्लिमों और पाकिस्तान के बीच का है। जैसा वे चाहें, वे इस मुद्दे को सुलझाएँ। और अगर आप कश्मीर को तीन भागों में बाँटना चाहते हैं-सीज फायर जोन, घाटी और जम्मू-लद्दाख क्षेत्र, और इस बारे में अगर घाटी में जनमत संग्रह कराया जाए, तो मुझे भय है कि कश्मीर के हिंदू और बुद्धिस्टों को उनकी इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान में धकेल दिया जाएगा। इसी तरह की समस्या हम पूर्व बंगाल में झेल रहे हैं।"[2]

('बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' : खंड 10, ले. खैरमोडे, पृ. 111-113)

उपरोक्त त्यागपत्र के सम्बन्ध में जो निवेदन है, उसमें डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की भूमिका स्पष्ट हो गई है।

डॉ. अम्बेडकर की भूमिका का स्वागत

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने संसद में 'हिंदू कोड बिल' की प्रस्तुति एवं स्वीकृति के सम्बन्ध में (विदेश-नीति को ध्यान में रखते हुए) डंके की चोट पर अपना जो त्यागपत्र दिया, उससे काँग्रेसी मर्माहत हुए। मंत्रिमंडल में रहते हुए बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने अपनी बुद्धिमत्ता एवं कार्यकुशलता से राष्ट्रहित में जो कार्य किए, उनका फायदा काँग्रेस को हुआ। लेकिन नेहरु का अहंभाव बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के मार्ग का रोड़ा बना। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को योजना मंत्री का पद देने का वायदा करके भी नहीं देना, आर्थिक समिति में डॉ. अम्बेडकर को चुने जाने के उपरांत भी नेहरु द्वारा वह चुनाव रद्द करना, आदि बातें भी त्यागपत्र के मूल में हैं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि डॉ. अम्बेडकर के स्वतंत्र एवं निर्भीक विचारों से भयभीत होकर नेहरु ने उन्हें अनदेखा किया, इस बात में भी उतनी ही सच्चाई है। इस कारण से भी नेहरु की गलत कार्य-प्रणाली का विरोध करना डॉ. अम्बेडकर के लिए आवश्यक हो गया था। इन व्यक्तिगत कारणों के साथ ही उन्होंने उपरोक्त महत्वपूर्ण विषयों के लिए मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दिया था। उनमें से भी महत्वपूर्ण मुद्दे नेहरु की विदेश-नीति और कश्मीर के सवालों पर उनकी ढुलमुल नीति के विरोध में था। जो नीतियाँ डॉ. अम्बेडकर को कतई नापसंद थी। डॉ. अम्बेडकर की इस भूमिका की अनेक समाचार-पत्रों ने खुलकर प्रशंसा की। 12 अक्तूबर, 1951 के 'नवशक्ति' पत्र के सम्पादकीय में इस बात पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट लिखा गया है कि,

"नेहरु की विदेश-नीति बिल्कुल बचकानी, अव्यवहारिक और सपने जैसी थी। देश की आज की प्राथमिक अवस्था को रास न आने वाली और अनेक

शत्रु-निर्माण करने वाली वह नीति थी। नेहरु को स्वतंत्र ढंग से कार्य करने का अवसर उसी समय मिलेगा, जिस समय यह देश शक्तिशाली और स्वावलंबी होगा। डॉ. अम्बेडकर के व्यवहारिक बुद्धि को यह नीति जंची नहीं। इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक बात न थी। नेहरु की भारत-पाक सम्बन्धी नीति ऐसी ही कमजोर और तत्वशून्य थी। कश्मीर का सवाल संयुक्त राष्ट्र संघ (यू. एन. ओ.) की ओर ले जाकर उन्होंने भयंकर गलती की और आज उसके परिणाम देश के हर नागरिक को आर्थिक दृष्टि से भुगतने पड़ते हैं। फौजी विशेषज्ञों का कहना है कि, कश्मीर में कुछ सप्ताह और युद्ध चालू रहता तो पूरा प्रदेश भारत के नियंत्रण में आता, लेकिन हमारी सरकार को अचानक शांति की याद आई और उन्होंने वहीं युद्ध रोक दिया। अभी नेहरु पाक के आह्वान को जवाब दे रहे हैं, कश्मीर पर हुआ आक्रमण भारत पर हुआ आक्रमण है, ऐसा नेहरु बताते हैं। बदकिस्मती से अभी भी पाक में युद्धोपयोगी सामग्री जा रही है। कश्मीर का 1/3 प्रदेश शत्रु के कब्जे में है, फिर भी नेहरु को ऐसा नहीं लगता कि पाक ने कश्मीर पर आक्रमण किया। जबकि इस सारी स्थिति से सारा देश त्रस्त है। इस स्थिति के कारण ही डॉ. अम्बेडकर के सामने बँटवारे की योजना सामने आई है। बंगाल के सवाल से भी वह अधिक महत्वपूर्ण है। फिर भी नेहरु उस मामले में लापरवाह हैं। यह उनका आक्षेप ठीक लगता है। (खैरमोडे, खंड 10, पृ. 103-104)

इस प्रकार 'मॅन्चेस्टर गार्डियन' ने अपने सम्पादकीय में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका की प्रशंसा की है, जो इस प्रकार है-

"कश्मीर का विभाजन यह एकमात्र विकल्प है, जो कि इस समस्या को हल कर सकता है। इस तरह की बात उस निवेदन पत्र में कही गई है। कश्मीर के सवाल पर भारत को हर साल 20 करोड़ खर्चा करना पड़ता है। यदि यह सवाल नहीं रहता तो इतनी बड़ी राशि समाज-प्रगति के कार्य के लिए खर्च की जा सकती थी। प. नेहरु ने अजीबोगरीब विदेश-नीति अपनाकर भारत के विदेशी मित्रों को दूर कर दिया। इस निवेदन पत्र में नेहरु की आलोचना की गई है। डॉ. अम्बेडकर ने जो खुले निवेदन पत्र में विचार व्यक्त किए हैं, उन्हें भारत की आम जनता जानती है।" ('उक्त' पृ. 128)

'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' का घोषणापत्र

डॉ. अम्बेडकर ने अपने त्यागपत्र में जो भूमिका प्रस्तुत की है, वह अखबारों तथा आम जनता को स्वीकार्य थी। उसी तरह वह देशहित और आंम जनता के कल्याण

की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। डॉ. अम्बेडकर ने 1952 के आम चुनाव में इस भूमिका का लाभ उठाने की कोशिश की। उस चुनाव में डॉ. अम्बेडकर ने अपने द्वारा स्थापित 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' के माध्यम से काँग्रेस का एक प्रभावी विरोधी पक्ष खड़ा करने की कोशिश की थी और चुनाव के समय उनका मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना उचित ही था। डॉ. अम्बेडकर ने इस आम चुनाव के लिए सितम्बर, 1951 में अपने दल का घोषणा-पत्र लिखा। उसमें उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक (औद्योगिक) आदि सवालों के संदर्भ में फेडरेशन की क्या नीति रहेगी और फेडरेशन का कार्यक्रम सफल बनाने के लिए किस राजनीति दल के साथ सहयोग करना पड़ेगा, इसकी भी नीति तय की थी। इस घोषणा-पत्र में 'विदेश-नीति का सवाल' इस शीर्षक के तहत 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' की भूमिका स्पष्ट की गई है। इस तरह की विदेश-नीति की इससे पहले ही डॉ. अम्बेडकर ने अपने विधिमंत्री पद के त्यागपत्र में भी स्पष्ट आलोचना की थी।

उन्होंने इस विदेश-नीति के सम्बन्ध में अपने घोषणापत्र में और भी विस्तार से चर्चा की है, जो इस प्रकार से है—

'विदेश-नीति का सवाल'

"जिस दिन भारत को आजादी मिली, उस दिन दुनिया के सभी राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे और वे राष्ट्र भारत के शुभचिंतक भी थे। आज की स्थिति उससे एकदम विरोधी है। आज भारत का कोई सच्चा मित्र नहीं है। सभी राष्ट्र भारत के शत्रु भले ही न हों फिर भी वे भारत से सख्त नाराज हैं। इसके लिए भारत की विदेश-नीति ही जिम्मेदार है। भारत की कश्मीर के बारे भूमिका, यू. एन. ओ. में कम्युनिस्ट चीन को सदस्यता प्राप्त हो, इसमें भारत की जल्दबाजी और कार्यरत युद्ध के बारे में उदासीनता इस सम्बन्ध में पिछले तीन वर्षों में बचकानी नीतियों के कारण इन राष्ट्रों ने भारत को नजरअंदाज किया है। कश्मीर के प्रति काँग्रेस सरकार की नीति दलित फेडरेशन को बिल्कुल पसंद नहीं है। यदि काँग्रेस सरकार की यही विदेश-नीति बरकरार रही, तो भारत और पाक के बीच गहरे मतभेद तो रहेंगे ही, बल्कि इन दो राष्ट्रों के बीच युद्ध होने की संभावना भी है। इन दो राष्ट्रों में आपस में मैत्री हो, यही फेडरेशन की प्रामाणिक इच्छा है। पाक के सम्बन्ध में निम्न बातों पर विचार विमर्श होना चाहिए—

1. विभक्त हुई हिंदुस्तान की एकता की भाषा बंद कर देनी चाहिए। और पाकिस्तान तथा भारत यह दो स्वतंत्र राष्ट्र हैं, इस बात को खुले दिल से स्वीकार करना चाहिए।

2. कश्मीर का विभाजन करके बहुसंख्यक मुस्लिम जनता की आम सहमति लेकर उस प्रदेश को पाक को दे देना चाहिए और गैर मुस्लिम प्रदेश (जम्मू और लद्दाख) को भारत के साथ जोड़ देना चाहिए। इससे दो राष्ट्रों में एकता स्थापित करने का एक अच्छा मौका प्राप्त होगा। फेडरेशन इस बात का अनुकूल प्रचार करेगी।

चीन के बारे में भारत ने जो नीति अपनाई है, उससे अन्य दोस्त राष्ट्र हमारे शत्रु बन गए हैं। यू. एन. ओ. में स्थायी सदस्यता के लिए भारत को अब तक लड़ाई लड़ना पड़ रहा है। इसका यह एक कारण है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। वास्तव में चीन अपने हक के लिए झगड़ने में समर्थ होने के बावजूद भी भारत ने बेवजह इस जिम्मेदारी को अपने सिर पर लेने का क्या कारण है, यही समझ में नहीं आ रहा है। चीन के प्रति भारत के रुझान के कारण अमेरिका की ओर से भारत को आर्थिक और यांत्रिकी सहयोग प्राप्त होना मुश्किल हो गया है। हमने उपनिवेशिक स्वराज्य को नकारा है। हम एक स्वतंत्र राष्ट्र हुए हैं। हम लोगों ने ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का सदस्य रहने की बात को स्वीकार कर लिया है। और इतना होने के बावजूद भी हमारे अन्य राष्ट्रों के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं। हमारी विदेश-नीति पर पूंजीवाद और लोकतंत्र के बीच के टकराव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। पूंजीवाद के प्रति घृणा की भावना को हम समझ सकते हैं। किन्तु लोकसभा में लोकतंत्र को गलत ढंग से प्रस्तुत कर उसका स्थान तानाशाही न ले सके, इसके लिए हम लोगों को सचेत रहने की आवश्यकता है। भारत की सबसे पहली जिम्मेदारी यह है कि, हम अपना उत्थान करें। साम्यवादी चीन को यूनो की सदस्यता प्राप्त हो, इसके लिए भारत को दौड़-धूप करने से पहले यूनो में स्थायी सदस्य के रूप में अपना स्थान निश्चित करने का प्रयास करना चाहिए। भारत ने माओ का समर्थन कर चंग कै शेख को नजरअंदाज करने की नीति छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि उससे भारत की हानि होगी। इसलिए भारत को यथाशीघ्र अपनी इस आत्मविनाशी विदेश-नीति में परिवर्तन कर लेना चाहिए, इसी में भारत की भलाई है। पूर्वीय राष्ट्रों की भलाई के लिए झगड़ने का नेतृत्व करने से पहले भारत को अपने हाथ मजबूत करने के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए और जितनी भी सहायता सम्भव हो, उतनी हासिल करने की कोशिश करे, तो ही भारत का प्रभाव बढ़ेगा। दलित फेडरेशन इसी प्रकार की विदेश-नीति का समर्थन करेगा।"

('उक्त', पृ. 169)

डॉ. अम्बेडकर की कश्मीर के सम्बन्ध में भूमिका

डॉ. अम्बेडकर ने चुनाव के घोषणापत्र में विदेश-नीति और कश्मीर सम्बन्धी अपनी भूमिका स्पष्ट रूप से रखी। इस बीच उनका लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों के

सामने 7 नवम्बर 1951 को "देश का राज्य कार्यभार लोकहित के लिए कैसे चलेगा?" विषय पर भाषण हुआ। इस भाषण में उन्होंने कश्मीर के सवाल पर अपनी स्पष्ट भूमिका रखी, जो इस प्रकार है–

> ''डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर-समस्या का संदर्भ देते हुए कहा कि कश्मीर संघ राज्य नहीं था। यह तो हिंदू, मुस्लिम और बुद्धिष्टों को मिलाकर संमिश्र राज्य था। जम्मू और लद्दाख गैर-मुस्लिम क्षेत्र था। जबकि कश्मीर घाटी मुस्लिम क्षेत्र था। उन्होंने कहा, "हमें मालूम नहीं कि कश्मीरी कैसे मत देंगे, लेकिन कुछ मिलाकर भारतीय जनमत तो संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए समर्पित है। अगर जनमत पाकिस्तान के हक में जाता है, तो बीस प्रतिशत गैर मुस्लिम जनसंख्या का क्या होगा? यह एक बड़ा सवाल है। अगर हम समूचे कश्मीर को नहीं बचा सकते तो कम से कम अपने सम्बन्धियों को ही बचाने का प्रयास किया जाए। यह एक सीधा-सादा विश्लेषण है, जिससे इंकार नहीं किया जा सकता।''[3]
>
> **('द टाइम्स ऑफ इंडिया', 10-11-1951)**

डॉ. अम्बेडकर की भूमिका पर मिली-जुली प्रतिक्रिया

डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर सम्बन्धी जो विचार रखे, उससे संपूर्ण देश में खलबली मच गई। इस विचार पर मिलीजुली प्रतिक्रिया व्यक्त होना स्वाभाविक था। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने दलित फेडरेशन के घोषणापत्र में कश्मीर-समस्या विभाजन करके सुलझाना चाहिए, ऐसी मांग की थी। तो दूसरी तरफ कश्मीर के विभाजन के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त होने लगीं। "कश्मीर का विभाजन, यानी भारत में अनेक स्थान निर्माण करने का दांव।" "डॉ. अम्बेडकर के सुझाव से मि. मसूदी गड़बड़ा गए।", इस तरह की खबरें अखबारों में छपने लगीं। विभाजन के सुझाव पर कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेन्स के महासचिव मौलाना महमूद सैद मसूदी ने दलित फेडरेशन के घोषणा-पत्र पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि,

> "यह एक जबर्दस्त साजिश है। कश्मीर ही नहीं यह तो भारत का विभाजन करके दलित और सिखों के लिए अलग-अलग स्वतंत्र स्थान निर्माण करने का यह दाँव है। जिससे किसी भी प्रचार के खतरे से मुक्त लगने वाली यह योजना भविष्य में भारत और कश्मीर के लिए खतरनाक हो सकती है। कश्मीर के विभाजनवादियों को उत्तेजित करने और भारतीय धर्मनिरपेक्षता को समाप्त करने के लिए यह सुझाव आया है और उसकी प्रेरणा बाहर से आई है।"
>
> **('नवशक्ति', 14-10-1951)**

मौलाना के द्वारा की गई आलोचना हम समझ सकते हैं, किन्तु डॉ. अम्बेडकर के सहयोगी रहे बंगाल शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के पूर्वाध्यक्ष तथा पाकिस्तान के पूर्व मंत्री जोगेन्द्रनाथ मंडल को डॉ. अम्बेडकर द्वारा सूचित कश्मीर का विभाजन मान्य नहीं किया। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के सुझाव को नकारा और उन्होंने इस प्रकार का निषेध व्यक्त किया-

> "समुदाय के आधार पर डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के द्वारा कश्मीर के विभाजन पर दिए गए सुझाव का परिणाम भय और उपद्रव की संभावना होती और इसकी भी संभावना बनती कि विनाश के वैसे दृश्य पुनः उभरते, जिनके हिन्दू, सिख, मुस्लिम भारत के विभाजन के बाद भुक्तभोगी रहे थे। पाकिस्तान की सेन्ट्रल केबिनेट के पूर्व सदस्य जे. एन. मण्डल ने ऐसा अनुभव किया।"[4]

('द टाइम्स ऑफ इंडिया' 16-10-1951)

बेरि. जोगेंद्रनाथ मण्डल ने यह भूमिका रखी थी कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को कश्मीर के विभाजन से काफी बड़ी परेशानी उठानी पड़ेगी। और उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के सुझाव की आलोचना की, जिसके कारण कई लोगों ने उनके वक्तव्य पर अपना रोष व्यक्त किया। कश्मीर के सम्बन्ध में बेरि. जोगेंद्रनाथ मण्डल की भूमिका बेहद ढोंगी थी; क्योंकि पाकिस्तान के अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों पर जब जुल्म-ज्यादतियाँ हो रही थीं और भारत में इसके खिलाफ निषेध की आवाजें उठ रही थीं, उस समय यही बेरि. मण्डल साहेब कह रहे थे कि, 'भारतीयों द्वारा इस तरह का निषेध करना गलत है। पाकिस्तान में सभी संप्रदाय के लोग बड़े मिलजुल कर रह रहे हैं,' इस प्रकार की चिकनी-चुपड़ी बातें कह रहे थे। इस आशय का पत्र पी. एस. मोरे ने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित किया था। मण्डल का ढोंग सिद्ध करने के लिए और डॉ. अम्बेडकर की बात का समर्थन करने के लिए पी. एस. मोरे लिखते हैं—

> "कश्मीर पर डॉ. अम्बेडकर का विचार हमें पाकिस्तान के बारे में उनके उस पूर्व अनुमान की याद दिलाता है, जो सच हुआ। हमारे प्रतिनिधियों के द्वारा जिस कमजोर तरीके से संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर का विषय रखा गया उससे यह आभास होता है कि कश्मीर का विभाजन भी होगा।"[5]

('द टाइम्स ऑफ इंडिया', 20-10-1951)

पाकिस्तान के सम्बन्ध में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जो भविष्यवाणी की थी, वह सच साबित हुई है और संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने जब यह सवाल गया, तब कश्मीर का विभाजन उचित ही रहेगा, इस प्रकार की भूमिका पी. एस. मोरे साहब ने रखी और उन्होंने इस तरह बेरि. मण्डल के सवाल का मुंहतोड़ जवाब दिया। उसी प्रकार के. आर. नइया ने भी 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को पत्र लिखकर डॉ. अम्बेडकर

के मत का समर्थन किया था। डॉ. अम्बेडकर की भूमिका वस्तुस्थिति पर आधारित है। यूनो में जब इस सवाल पर बहस हो रही है उस समय कश्मीर का विभाजन स्वीकार कर लिया जाए या भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता को अस्वीकार करना चाहिए, इसमें पहला रास्ता ही दूसरे की अपेक्षा ज्यादा उचित है। यही डॉ. अम्बेडकर की राय थी। तो फिर बेरि. मण्डल, डॉ. अम्बेडकर की भूमिका को किस आधार पर गलत मानते हैं?

पं. नेहरु के रोषपूर्ण उद्गार

मुंबई शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से चुनाव प्रचार शुरु हो गया था। पहली चुनाव प्रचार सभा सैन्ट जेवियर जीमखाना मैदान में 21.11.51 को हुई थी। इस सभा में काफी भीड़ इकट्ठा हुई। इस सभा में बाबा साहेब ने अपने कार्य की रूपरेखा जनता के सामने रखी थी और नेहरु सरकार की नीति पर करारे प्रहार किए थे। उस सभा के तुरन्त बाद दूसरे ही दिन काँग्रेस की ओर से मुंबई चौपाटी पर विशाल सभा का आयोजन किया गया था। उस सभा में चुनाव प्रचार का पहला भाषण जवाहरलाल नेहरु ने दिया था। जिसमें उन्होंने डॉ. अम्बेडकर द्वारा काँग्रेस सरकार के खिलाफ जो मुद्दे उठाये थे, उनका जवाब दिया। सभा में रोषपूर्ण होते हुए नेहरु ने कहा,

> "मेरी विदेश-नीति पर कई लोगों की ओर से अनेक प्रकार की आलोचनाएँ हो रही हैं। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि इस नीति के कारण हमारे कोई दोस्त नहीं रहे हैं, किन्तु मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि इसी नीति के चलते हमारी दुनिया में काफी प्रतिष्ठा बढ़ी है। तात्विक दृष्टि से ही नहीं, व्यवहारिक दृष्टि से भी यही भूमिका सही साबित हुई है। मेरे प्रधानमंत्री रहते हुए हमारी नीति तटस्थ रहेगी। जिन लोगों को हमारी विदेश-नीति स्वीकार नहीं है, उन्हें काँग्रेस को अपना मत नहीं देना चाहिए।"

('डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर', चरित्र खंड-10, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 214)

अपने इसी मत को अधिक स्पष्ट करते हुए नेहरु ने आगे कहा–

> "दुनिया के नक्शे पर जबकि 70/72 राष्ट्र दिखाई दे रहे हैं, फिर भी सही मायने में स्वतंत्र राष्ट्र थोड़े ही हैं। अन्य राष्ट्र किसी न किसी शक्तिशाली राष्ट्र के प्रभाव में है। भारत सही मायने में स्वतंत्र राष्ट्र है। हमने यूनो में अपनी स्वतंत्रता, न्याय-प्रेम और सच्चाई सिद्ध करके प्रशंसा हासिल की। आज की स्थिति में भारत की इससे अलग विदेश-नीति नहीं हो सकती।"

('उक्त', 216, 'नवशक्ति', 24.11.1951)

मद्रास की एक चुनाव प्रचार की विराट सभा में नेहरु ने फिर से समाजवादी और शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की संयुक्त नीति पर टीका की और विदेश-नीति का विश्लेषण करते हुए कहा,

> "मंत्रिमंडल से बाहर निकलते ही डॉ. अम्बेडकर ने भारत की विदेश-नीति पर टिप्पणी की है। क्या अशोक मेहता और डॉ. अम्बेडकर की दोस्ती में समाजवादियों ने अम्बेडकर की विदेश-नीति स्वीकार की है? क्या डॉ. लोहिया जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यक्ति को अम्बेडकर के लिए समाजवादी पक्ष ने छोड़ दिया है? इस बारे में डॉ. लोहिया अभी तक बताते थे कि, विदेश-नीति कैसे हजम करना चाहिए। लेकिन समाजवादी आसमान में अभी डॉ. अम्बेडकर और डॉ. लोहिया जैसे दो तारे जगमगाएँगे और नजदीक आकर भी वे क्या करेंगे?" ('नवशक्ति', 28.11.1951)

पं. नेहरु को दिया गया उत्तर

पं. नेहरु ने डॉ. अम्बेडकर के विरोध में अपना मत व्यक्त करने की कोशिश की, तो उस समय बम्बई के 'नवशक्ति' ने 'व्यक्तिरेखा' के अंतर्गत 'विरोधी पक्ष के नेता अम्बेडकर' शीर्षक से बाबा साहेब के कार्यों के बारे में एक बड़ा लेख लिखा था, उसमें स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि,

> "डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद चार वर्षों तक मंत्री पद पर रहकर हिंदू कोड बिल, प्रतिनिधित्व का बिल आदि महत्वपूर्ण कानून सम्बन्धी कार्य किए। उन्होंने संविधान सभा की मसौदा समिति में जो कार्य किए वह अपूर्व हैं। चार वर्षों तक उन्होंने अपने ज्ञान से पूरे देश को परिचित कराया, लेकिन उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के बजाय नेहरु ने डॉ. अम्बेडकर को झूठा साबित करने का प्रयास किया। पं. नेहरु की यह विदेश-नीति उनकी अपनी जायदाद नहीं थी, फिर भी डॉ. अम्बेडकर ने मंत्रिमंडल में रहते हुए भी संयुक्त जिम्मेदारी निभाकर पं. नेहरु की आलोचना नहीं की। बाद में की गई डॉ. अम्बेडकर की आलोचना आधारहीन नहीं थी, इस बात का मुझे पूरा भरोसा है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने नेहरु सरकार की अगर खाल उधेड़ने का प्रयास किया होता तो उसका क्या परिणाम होता? इस बारे में आप ही सोचिए।"

('नवशक्ति', 25.11.1951)

'नवशक्ति' ने डॉ. अम्बेडकर के विचारों का समर्थन किया और उनसे साक्षात्कार लेकर कश्मीर की समस्या पर उनके विचार जानने का प्रयास किया। विदेश-नीति

के बारे में इस साक्षात्कार में कोई भी सवाल पूछा नहीं गया। किन्तु कश्मीर की समस्या के बारे में डॉ. अम्बेडकर को अनेक सवाल पूछे गए। कश्मीर का विभाजन जातीय तत्वों के आधार पर किया गया तो क्या द्विराष्ट्रवाद मान लेना चाहिए? इस सवाल का जवाब देते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं–

> "मैं यथार्थवादी पुरुष हूँ। जो दिखता है, उस पर विचार कर उसका उपाय ढूंढना यह किसी राजनीतिक मनुष्य का काम है और मैंने पहले पाकिस्तान को मान्यता देने का आग्रह सोच रखा था। आस्ट्रेलिया, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों में जो हुआ, उसकी पुनरावृत्ति इस देश में नहीं होगी, ऐसा मुझे लगता था। इसीलिए मैंने स्पष्ट रूप से बताया कि अगर मुसलमानों के लिए उनका स्वयं का राज्य चाहिए, तो उन्हें एक ही राज्य में उनकी इच्छा के खिलाफ दबाकर नहीं रख सकते। क्या उस प्रकार ही नहीं हुआ और सब मुसलमान पाक के लिए नहीं लड़े और उन्होंने स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण नहीं किया? उस बँटवारे का कश्मीर आखिरी भाग है, यही मेरा मत है।"

('नवशक्ति', 25.11.1951)

डॉ. अम्बेडकर की हार में भी विजय का सिरपेच

कश्मीर में हिंदू-बौद्धों को बचाने के लिए बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने विभाजन की अपनी नीति को स्पष्ट किया। अपने धर्म के, संस्कृति के जो लोग हैं, उनको बचाना, इसमें कौन-सी जातीयता दिखाई देती है? इस तरह का सवाल निर्माण करके उन्होंने कश्मीर में प्रादेशिक सार्वमत के लिए नेहरु का परामर्श लिया। इस सार्वमत में यदि भारत की पराजय हुई तो वहाँ पर हिन्दू और बौद्धों की स्थिति क्या होगी? क्या पूर्व बंगाल की पुनरावृत्ति जैसी स्थिति वहाँ नहीं होगी? क्या एक नए निर्वासितों की समस्या निर्माण नहीं होगी?

इस तरह के सवाल निर्माण करके बाबा साहेब ने कश्मीर के बँटवारे पर फिर से विचार किया और स्पष्ट रूप से यह कहा कि,

> "मान लीजिए, हिंदू व मुसलमानों का एक अविभाज्य परिवार है। और उन्होंने एक दूसरे से अलग रहने का निश्चय किया तो क्या उनकी संयुक्त संपत्ति का विभाजन नहीं किया जाए? विभाजन के बाद कश्मीर और हैदराबाद जैसी रियासतें शेष थीं। हैदराबाद में हिंदुओं की संख्या अधिक होने से वे भारत में आए। अब बचा कश्मीर, उस सम्बन्ध में हमारी भूमिका शुरु से ही अनिश्चित रही है। युद्ध हुआ और हम यूनो की तरफ गए। अब सीमा

समिति बनाकर हम कश्मीर का भविष्य निश्चित कर रहे हैं। आज अपनी रक्षा का खर्चा उठाना मुश्किल है। ऐसी स्थिति में कश्मीर का सवाल हम कितने दिन तक अनुत्तरित रखेंगे?" ('उक्त', 5.11.1951)

संक्षिप्त में 1951 के चुनाव में विदेशी नीति और कश्मीर के सवाल का बड़ा शोरगुल हुआ। शे. का. फेडरेशन और समाजवादियों ने संयुक्त रूप से काँग्रेस के खिलाफ मोर्चाबंदी की थी। दोनों पार्टियों के नेताओं ने अपने-अपने पक्ष में विचार रखने के प्रयास किए। शे. का. फेडरेशन और समाजवादियों के बीच विदेशी-नीति और कश्मीर की समस्या पर कुछ मतभेद थे। इसका ही फायदा काँग्रेस ने उठाया। जन. 1952 के पहले सप्ताह में चुनाव हुए और आश्चर्य की बात यह कि डॉ. अम्बेडकर इस चुनाव में पराजित हुए। इसकी मीमांसा करते हुए 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (३. 2.1952) के अंक में एक पाठक ने लिखा है कि, 'अम्बेडकर ने जिस ढंग से इस्तीफा दिया और कश्मीर की समस्या और विदेशी नीति पर जिस क्रूरता से हमला किया, इसलिए मतदाता उनसे चिढ़ गए और उन्हें हरा दिया।'

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के सुझाव को उस समय की सत्ता और जनता ने स्वीकार किया होता तो हमारी विदेश-नीति और कश्मीर की समस्या की दुर्गति आज नजर नहीं आती। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर जैसे दूरदर्शी व्यक्ति की राजनीतिक हार होने पर भी उनके विचारों की विजय हुई है।

1. "When I think of our foreign policy] I am reminded of what Bishmark and Bernard Shaw have said. Bismark has said that, 'Politics is not a game of realising the ideal. Politics is the game of the possible.' Bernard Show, not very ago, said that. Good ideas are good but one must not forget that it is often dangerous to be too good." Our foreign policy is in complete opposition to those words of wisdom uttered by two of the world's greatest men."

   (Khairmode, Vol. 10, P. 111)

2. "The third matter has given me cause not merely for dissatisfaction but for actual anxiety and even worry in the foreign policy of the country. Anyone who has followed the course of our foreign policy and alongwith it the attitude of other countries towards India could not fail to relize the sudden change that has taken place in their attitude towards us. On 15th of

August 1947 when we began our life as an independent country, there was no country which wished us ill. Every country in the world was our friend. Today, after four years, all our friends have deserted us. We have no friends left. We have alienated ourselves.

Out of 350 crores of rupees of revenue we raise annually, we spend about 180 crores of rupees only on the Army. It is a colossal expenditure which has hardly any parallel. This colossal expenditure is the direct result of our foreign policy. We have to foot the whole of our Bill defence ourselves, because we have no friends on which we can depend for help in any emergency that may arise. I have been wondering whether this is the right sort of foreign policy?

Our quarrel with Pakistan is a part of our foreign policy about which I feel deeply dissatisfied. There are two grounds which have distrubed our relations with Pakistan. one is Kashmir and the other is the condition of our people in East Bengal Where the condition of our people seems, from all the newspapers intolerable than with Kashmir. Notwithstanding this we have been staking our all on the Kashmir issue. Even then, I feel that we have been fighting on an unreal issue. The issue on which we are fighting most of the time is who is in the right and who is in the wrong. The real issue to my mind is not who is in the right but what is right? Taking that to be the main question, my view has always been that the right solution is to partition Kashmir. Give the Hindu and Buddhist part to India and the Muslim part to Pakistan, as we did in the case of India. We are really not concerned with the Muslim part of Kashmir. It is a matter between the Muslims of Kashmir and Pakistan. They may decide the issue as they like. Or if you like, divide it into three parts-the cease fire zone, the valley and the Jammu-Ladakh region and have a plebiscite only in the valley. What I am afraid of is that in the proposed plebiscite, which is to be an over all plebiscite the Hindus and Buddhists of Kashmir are likely to be dragged into Pakistan

against their wishes, and we may have to face the same problem as we are facing today in East Bengal."

(Khairmode, Vol 10, P. 111-113)

3. "Dr. Ambedkar referred to the Kashmir problem and said that Kashmir was not a unitary state. It was a composite state, consisting of Hindus, Buddhist and Muslims. Jammu and Ladak were non-Muslim area whereas the Kashmir valley was Muslim. He said: 'We do not know how the Kashmiries will vote but Indian is committed to the United Nations for an overall plebiscites. If the plebiscite goes in favour of pakistan, what will happen to the 20 percent non-muslim population? That is a very big question. If we cannot save the whole of Kashmiri, at least let us save our kith and kin. It is a plain analysis of part which cannot be denind."

('The Times of India', 10.11.1951)

4. "Dr. B.R. Ambedkar's suggestion for the division of Kashmir communitywise was fraught with mischievous potentialities and was bound to repeat the scenes of horror and devastation which Hindus, Sikhs and Muslims experienced after the partition of India, observed Mr. J.N. Mandal, a former member of the Pakistan Central Cabinet, here to-day."

('The Times of India', 16.10.1951)

5. "Dr. Ambedkar's views on Kashmir remind us of his forecast about Pakistan, which has proved true. The poor manner in which the Kashmir case has been placed before the United Nations by our delegates makes on feel that things are heading for the partitioning of that unfappy state."

('The Times of India' 20.10.1951)

अध्याय 6

डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति

अपनी विदेश-नीति में हम पूंजीवाद और संसदीय प्रजातंत्र के बीच भेद नहीं कर पाए हैं। पूंजीवाद की नापसन्दगी समझने योग्य है। लेकिन हमें ध्यान में रखना चाहिए कि संसदीय प्रजातंत्र कमजोर होने पर तानाशाही का विकास न होने पाए। वरना यह बिल्कुल वैसा ही होगा जैसे कि बच्चे को 'टब' में नहलाने के बाद गंदा पानी बाहर फेंकने के साथ बच्चे को भी फेंक देना, पर पानी को फेंक कर बच्चे को उठा लेना चाहिए।[1] (7-10-1951)

-डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

('डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर' चरित्र खंड-10, लेखक चां. भ. खैरमोडे, प. 159-मराठी)

आजाद भारत में संविधान लागू होने के उपरांत पहली संसद की राज्यसभा में डॉ. अम्बेडकर 1952 में चुनकर आए। 23 मई, 1952 के बजट सत्र में राज्यसभा में 1952-53 के बजट पर चर्चा हुई। इसी सत्र में 27 मई को डॉ. अम्बेडकर ने बजट पर अध्ययनपूर्ण विस्तृत भाषण दिया। इसी भाषण में उन्होंने नेहरु की विदेश-नीति और कश्मीर-समस्या पर सरकार की खिंचाई की।

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की विदेश-नीति को समझने के लिए पं. जवाहरलाल नेहरु और डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति का तुलनात्मक अध्ययन करना जरूरी हो जाता है।

भारत की विदेश-नीति के बारे में कहा जाता है कि, हिंद महासागर शांति का आंगन बनना चाहिए। यह भारत की विदेश-नीति का महत्वपूर्ण सूत्र है। भारत की इस अनोखी विदेश-नीति की विशेषता को ध्यान में रखकर उपमहाद्वीप और पूर्व रशिया, अरब राष्ट्र आदि के बीच आर्थिक और सरकारी स्तर पर आपसी सम्बन्ध स्थापित हो, यही भारत की विदेश-नीति है।

विदेश-नीति के मूल मार्गदर्शक तत्वों के बारे में कहा जाता है कि, विश्व में शांति स्थापना के लिए क्रियाशील रहना, विश्व के सब देशों के साथ सहयोग की भूमिका पर सम्बन्ध बढ़ाना, समान और न्यायपूर्ण अर्थव्यवस्था उभारने हेतु प्रयत्नशील रहना, साथ ही विश्व में जहाँ कहीं भी स्वतंत्रता और समता के लिए संघर्ष चल रहा हो, उसे मन से समर्थन देना, यही हमारी विदेश-नीति के बुनियादी तत्व हैं।

गुटनिरपेक्ष की संकल्पना, उपनिवेशवाद विरोधी संकल्पना, साम्राज्यवादी संकल्पना तथा आपस में शांति के साथ रहने की संकल्पना आदि को भारत की विदेश-नीति का आधार मानकर नेहरु ने इन्हीं के तहत अपनी नीतियों को अमलीजामा पहनाया है।

नेहरु की विदेश-नीति पर प्रहार

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने बजट पर भाषण देते हुए नेहरु की विदेश-नीति पर तीखा प्रहार करते हुए कहा था कि,

> "हम बतला चुके हैं कि हमारी विदेश-नीति शांति और भाईचारे की नीति है। मेरे सम्मानित मित्र, दीवान चमनलाल ने इसे नेहरु का सिद्धांत कहा है। अगर नेहरु के सिद्धांत का यही ध्येय है तो इसका स्वागत है, बशर्ते कि इसे सभी मानें। लेकिन अगर विश्व में शांति और भाईचारा बनाए रखने के लिए यह भारत की विदेश-नीति है, तब मैं जानना चाहता हूँ कि हमारा दुश्मन या हमारे दुश्मन कौन हैं, जिनके खिलाफ या जिनसे बचाव हेतु हम 197 करोड़ रुपया फौज पर खर्च कर रहे हैं।"[2]

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' खंड 11, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 15)

पड़ोसी राष्ट्रों से भाईचारा, मैत्री और सद्भावना स्थापित करना ही अगर नेहरु की विदेश-नीति है तो उनका स्वागत है और उसे अमलीजामा पहनाना चाहिए। संपूर्ण विश्व में यदि शांति स्थापित करना ही यदि भारत का उद्देश्य है तो फिर किस दुश्मन के लिए खामखाँ सरकार 197 करोड़ रुपये सेना पर खर्च कर रही है? ऐसा महत्वपूर्ण सवाल डॉ. अम्बेडकर ने रेखांकित किया।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने उस भाषण में विस्तार से बजट प्रस्ताव पर चर्चा की। इस समय भारत की कुल आय (Revenue) 404 करोड़ है और उसमें से केवल सेना पर होने वाले खर्च को यदि हम 50 करोड़ कम कर दें, तब दामोदर घाटी योजना का कार्य तीन वर्ष में पूरा हो जाएगा और विदेश से हमें 50 करोड़ का कर्जा भी नहीं लेना पड़ेगा। कश्मीर की सुरक्षा के लिए यह खर्च आवश्यक है अगर कोई ऐसा कहता है तो कश्मीर और भारत पर आक्रमण करने की मूर्खता पाकिस्तान नहीं करेगा, ऐसी डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की मान्यता थी। सेना पर जरूरत से ज्यादा होने

वाले खर्च में कटौती कर उसे समाज के हित में लगाया जाए, यही उनका संदेश था। पाकिस्तान के हमले का डर दिखलाकर राष्ट्रीय आय को गलत तरीके से खर्च करना डॉ. अम्बेडकर को नापसंद था। इसलिए उन्होंने नेहरु की विदेश-नीति पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि,

> "लेकिन जैसा कहा जाता है कि दुनिया में हमारा कोई दुश्मन नहीं है। तब सेना के रख-रखाव का क्या औचित्य है? यह बात मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आती है। दूसरे, जैसा कि कश्मीर के संदर्भ में पाकिस्तान की शत्रु के रूप में संभावना प्रगट की जाती है। मैं कश्मीर के लिए सम्मान रखते हुए यह उम्मीद रखता हूँ कि इस सदन को इस सवाल पर बहस करने के समूचे अवसर हैं। मेरे पास और अधिक कुछ कहने का समय नहीं है, न ही कश्मीर जैसी समस्या पर इसके अलावा कुछ और कहा ही जा सकता है। लेकिन इतना अवश्य है कि यह मसला संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत है। और मैं यह कहना चाहता हूँ कि पाकिस्तान इतना मूर्ख नहीं है जो कि वह कश्मीर पर हमला करेगा! इसलिए मैं पुनः यह दोहराना चाहता हूँ कि सेना के रखरखाव की क्या आवश्यकता है?"[3]

('उक्त', पृ. 16)

कश्मीर के सवाल को लेकर हमारी सेना पर बहुत अधिक सुरक्षा सम्बन्धी खर्च करने के स्थान पर इस समस्या का हल करने की आवश्यकता है। लेकिन भारत सरकार की नीति इस समस्या के संदर्भ में बेहद निष्क्रिय दिखाई देती है। बाबा साहेब ने इस पर खेद व्यक्त किया।

नेहरु ने आम सहमति के आधार पर इस समस्या का हल खोजना चाहा है। परंतु इस तरह से इस समस्या का हल कदापि होने वाला नहीं है। यदि बाबा साहेब के कश्मीर सम्बन्धी सुझाव को नेहरु मंत्रिमंडल ने स्वीकार किया होता तो यह समस्या कब की सुलझ गई होती। बाबा साहेब की नीति का नेहरु ने विरोध किया। जबकि बाबा साहेब के भाषण पर अनेक सांसदों ने अपने मत व्यक्त किए। उन्होंने रक्षा बजट पर होने वाले खर्च में कटौती के विचार का भी समर्थन किया, लेकिन कश्मीर के सवाल पर बाबा साहेब के दिए गए वक्तव्य का उन्हीं सदस्यों ने जोरदार विरोध किया। इनमें मद्रास से श्री. रामाराव, श्रीमती वायलेट अल्वा तथा श्री. के. एस. हेगडे थे। लेकिन क्या इनके तीखे विरोध से बाबा साहेब के विचार दब जाएँगे?

डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति की भूमिका

इस विषय पर भारत सरकार की विदेश-नीति का प्रस्ताव प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री जवाहरलाल नेहरु ने राज्यसभा के पटल पर 26 अगस्त, 1954 को चर्चा के लिए रखा। इस प्रस्ताव पर नेहरु ने विदेश मंत्री के नाते अपने विचार रखे। बीच-बीच में अन्य सदस्यों के भी भाषण हुए। उनके बाद डॉ. अम्बेडकर ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने अपने भाषण में नेहरु की विदेश-नीति का उल्लेख करते हुए अपने विचारों को बड़ी निर्भीकता से रखा। गोवा के सवाल को भी शांतिपूर्वक हल करने हेतु उन्होंने पुरजोर समर्थन किया। लेकिन उन्होंने सुझाया कि, शांति से समस्या का हल करने में काफी समय लगेगा। जैसे, अमेरिका ने फ्रांस से 'लुसियाना' देश खरीद लिया था, वैसे ही पुर्तगाल से भारत को गोवा खरीद लेना चाहिए या लंबे समय के लिए उसे गिरवी रख लेना चाहिए। इस तरह से गोवा का प्रश्न शांतिपूर्वक सुलझ जाएगा। सीटो (आग्नेय एशिया सुरक्षा संगठन) इस संस्था के विरोध की बात प्रधानमंत्री ने कही। डॉ. अम्बेडकर का इस संदर्भ में यह कहना है कि अगर भारत 'सीटो' का सदस्य बन जाता तो रूस और चीन के आक्रमण को रोका जा सकता था और ल्हासा को चीन के वर्चस्व में जाने से रोका जा सकता था। इसलिए बाबा साहेब का मानना था कि, तत्कालीन प्रधानमंत्री की 'सीटो' के सम्बन्ध में जो नीति थी, वह उचित नहीं थी।

भारतीय विदेश-नीति में शांति की रक्षा को अति महत्व दिया जाए, यह अच्छी बात है। लेकिन सहजीवन और पंचशील को भारत सरकार ने आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है। यह अच्छी बात नहीं है। बाबा साहेब ने यह बात दृढ़ता से कही। सहजीवन और पंचशील के सिद्धांत नैतिकता पर आधारित हैं। इसलिए उसका राजनीति में स्थान नहीं है। कम्युनिस्ट देशों में तो उनका बिल्कुल ही स्थान नहीं है। भारत जिन राष्ट्रों से सहजीवन एवं पंचशील पालन हेतु वचनबद्ध हो गया है, वे कम्युनिस्ट राष्ट्र हैं। इसलिए वे इन नैतिक मूल्यों को राजनीति में कौड़ी की कीमत भी नहीं देंगे। महायुद्ध के बाद कम्युनिस्ट रशिया विश्व के कुछ राष्ट्रों को खा गया है और साम्राज्यवादी नीति के तहत कुछ देशों को अपने वर्चस्व में रखा है। आधे से अधिक एशिया कम्युनिस्ट सत्ता में चला गया। चीन ने तिब्बत पर हमला कर दिया। इन परिस्थितियों में अगर भारत सहजीवन और पंचशील के आधार पर चीन के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाना चाहता है तो वह धोखा खाएगा इस तरह का संकेत डॉ. अम्बेडकर ने दिया था जो बाद में सच भी हुआ। असल में कम्युनिस्ट की विचारप्रणाली का मतलब है—राक्षसी प्रवृत्ति। और यह प्रवृत्ति भारत को भी प्रभावित कर सकती है। भारत लोकतंत्र की इज्जत करने वाला महत्वपूर्ण देश है, तो रूस,

चीन आदि कम्युनिस्ट देश लोकतंत्र को नष्ट करने में प्रयत्नशील हैं। इसलिए इन देशों के साथ भारत के सहजीवन के सिद्धांत कैसे मेल खा सकते हैं, यह एक बड़ा रहस्य है! यह सिद्धांत ही मूलतः गलत है और भारत को उसका त्याग कर देना चाहिए, यही डॉ. अम्बेडकर का कहना था।

कश्मीर विषयक नीति

कश्मीर की समस्या के संदर्भ में नेहरु की विदेश-नीति पर कटाक्ष करते हुए बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा था,

> "हमारी विदेश-नीति का प्रमुख तत्व है दूसरे देशों की समस्याओं को सुलझाना, न कि स्वयं अपने देश की समस्या का हल करना। हमारे सामने कश्मीर की समस्या है, जिसे सुलझाने हेतु हम सफल नहीं हुए हैं। हर कोई इस समस्या को भूलता-सा जान पड़ता है। लेकिन यह मेरी मान्यता है कि हम एक दिन जागेंगे। जब पता चलेगा कि भूल यही है। और जैसा कि मुझे पता चला है कि भारत को कश्मीर से जोड़ने के लिए प्रधानमंत्री ने सुरंग खोदने के प्रोजेक्ट का आरंभ किया है। महोदय, देश के प्रधानमंत्री का यह सबसे भयंकर कार्य है। प्रधानमंत्री नेहरु क्या ऐसा सोचते हैं, कि इस सुरंग का इस्तेमाल वे अकेले ही करेंगे? वे नहीं जानते कि हमलावर जो दूसरी तरफ से आता है और कश्मीर पर वर्चस्व स्थापित कर लेता है, क्या वह पठानकोट से सीधा आ सकता है? और शायद जैसा मैं जानता हूँ कि वह प्रधानमंत्री के घर में ही आएगा।"[4]

('उक्त', पृ. 100)

नेहरु सरकार की विदेश-नीति का आशय है कि दूसरे देशों की समस्याओं का ख्याल करना और अपने देश की समस्या की अनदेखी करना। भारत की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या, यानी कश्मीर-समस्या को भी अनदेखा किया जा रहा है। कश्मीर व भारत को नजदीक लाने हेतु सुरंगीय रास्ता बनाया जा रहा है। लेकिन यह योजना भारत के लिए हानिकारक है, कभी न कभी कश्मीर प्रांत पाकिस्तान, चीन और रशिया के आक्रमणों से घिर जाएगा और तब यदि यहाँ सुरंगीय रास्ता तैयार होगा तो भारत पर आक्रमण करने के लिए उन हमलावर देशों को निस्संदेह सरल मार्ग मिल जाएगा। इंग्लैंड और फ्रांस को जोड़नेवाला सुरंगी रास्ता ब्रिटिश खाड़ी के नीचे से होकर तैयार होने वाली इंग्लैंड की योजना 50 वर्षों से चल रही है। लेकिन सुरक्षा की दृष्टि से फ्रांस कमजोर देश है। अगर वह हमलावर देशों के हाथ पड़ गया तो इंग्लैंड पर आक्रमणकारी देश को वह सुरंगी रास्ता मिल जाएगा। यह बात इंग्लैंड

भी जानता है, इसलिए सुरंगी रास्ता बनाने में उसकी रुचि नहीं है। भारत को इससे सीख लेनी चाहिए—इस तरह का महत्वपूर्ण सुझाव डॉ. अम्बेडकर ने दिया।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चर्चा

डॉ. अम्बेडकर के प्रभावी भाषण के पश्चात् ही डॉ. पी. सुब्बारायन, पी. सुन्दरय्या, जे. एल. कौशल, एच. एन. कूंझरू, डॉ. ए. आर. मुदलियार, श्रीमती व्हायोलेट अल्वा, श्रीमती लीलावती मुन्शी, प्रो. जी. रंगा आदि ने अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। श्रीमती मुंशी ने डॉ. अम्बेडकर के प्रति आदर भाव प्रगट करते हुए कहा कि, उन्होंने कुछ गलत मुद्दे बयान किए हैं। कृष्णमेनन और नेहरु ने भी चर्चा में उठे सवालों के जवाब दिए। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर सदन में मिलीजुली प्रतिक्रियाएँ और विचार आए।

भारत सरकार की विदेश-नीति के सम्बन्ध में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जिस सावधानी को बरतने के संकेत 26 अगस्त 1954 में अपने भाषण में दिए, उनके उस भाषण की तत्कालीन कुछ समाचार-पत्रों ने उनकी काफी प्रशंसा की तथा कुछ ने प्रतिकूल टीका-टिप्पणी भी की।

रूस तथा चीन जैसे साम्यवादी विचारधारा वाले देशों पर निर्भर रहना या इन्हें नाखुश करना आदि दोनों ही नीतियाँ भारत के लिए हितकर नहीं है। बाबा साहेब के इन विचारों की ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिकी समाचार पत्रों 'न्यूज क्रॉनिकल', (लंदन, 27 अगस्त 1954) 'दि डेली टेलीग्राफ' (लंदन, 27 अगस्त, 1954) 'दी आब्जरवर' (लंदन, 29 अगस्त, 1954) आदि ने प्रशंसा की। इन पत्रों ने डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति सम्बन्धी विचारों को प्रमुखता से प्रकाशित कर उन्हें प्रसिद्धी दी।

फिर 21 अगस्त, 1955, रविवार को मुंबई में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक सभा हुई। जिसमें दस प्रस्ताव मंजूर हुए-उसमें से कुछ प्रस्ताव इस प्रकार हैं-1. केन्द्रीय और राज्य विधान मंडल, जिला व स्थानीय निकाय बोर्ड, इसमें शेड्यूल्ड कास्ट्रस फेडरेशन के सदस्यों को आरक्षण देने की जो पद्धति थी, उसे चुनाव से पहले शीघ्रताशीघ्र रद्द करना चाहिए। 2. भारत के विदेश-नीति का विरोध। 3. गोवा में चल रहे उनके मनमर्जी के सत्याग्रह के प्रति असहमति। ('नवशक्ति', 24-8-55)

डॉ. अम्बेडकर की देशहित-नीति

सन 1955 में डॉ. अम्बेडकर ने भारत सरकार की विदेश-नीति के बारे में अपना विरोध दर्ज करते हुए भारत की विदेश-नीति क्या होनी चाहिए, इसके बारे में अपनी स्पष्ट भूमिका रखी। निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि बाबा साहेब की

विचारधारा के अनुकूल अगर विदेश-नीति लागू होती तो अन्य राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध भी बनते। क्योंकि यही नीति भारत के लोककल्याण का आधार था। लेकिन नेहरु की तत्कालीन काँग्रेस सरकार के वर्चस्व के कारण देश को भयानक परिणाम भोगने जैसा था, यह वास्तविकता है। अब नेहरु की विदेश-नीति का कैसे पराभव हुआ और डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति कैसे योग्य रही, इसी पर विचार करना है।

भारत को आजादी मिलने के बाद उसकी विदेश-नीति को अमलीजामा पहनाना आवश्यक था। पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना, इसी नीति का एक अंग था। लेकिन इस तरह की नीति का पालन भारत सरकार की तरफ से नहीं हुआ। विशेष तौर पर पाकिस्तान, जो भारत का ही एक अंग था। भारत की ओर से उससे वैसा दोस्ताना व्यवहार नहीं हुआ। बल्कि पाक को ठिकाने लगाने के लिए पड़ोसी देश चीन तथा रूस से सम्बन्ध बनाने के प्रयास किए गए। सन 1958-59 में चाऊ-एन-लाई बम्बई आए और 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाए गए। चूँकि चीन भी बौद्ध देश था, इसलिए भारत-चीन के सम्बन्ध और मजबूत हो सकते हैं, ऐसी नेहरु की समझ हो सकती है। चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाए जाने के सम्बन्ध में भारत ने अपना समर्थन दिया, जिससे अमेरिका नाराज हुआ था। चीन सम्बन्धी विदेश-नीति के कारण दोस्त राष्ट्र भी शत्रु हो गए। इस तरह भारत ने यह जोखिम भरा कदम उठाकर और चीन के साथ पंचशील समझौता करके अपना ही दिवाला निकाला। 1954 में राज्यसभा में विदेश-नीति पर भाषण करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था कि,

> "हां, माओ ने जैसे ही तिब्बत शांति समझौते के अंतर्गत पंचशील को लिया, प्रधानमंत्री नेहरु उसी विचारधारा का पालन करते रहे हैं। मैं इससे थोड़ा आश्चर्य में हूँ। प्रधानमंत्री के द्वारा पंचशील को गंभीरतापूर्वक लेना चाहिए। पंचशील जैसा कि आप जानते हैं, यह बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। और अगर माओ के मन में पंचशील के प्रति श्रद्धा होती तो वे अलग तरह से अपने देश में बौद्धों के साथ व्यवहार करते। राजनीति में पंचशील के लिए कोई जगह नहीं है और कम्युनिस्ट देश की राजनीति में तो बिल्कुल ही नहीं। कम्युनिस्ट देश दो बातों का विशेष तौर पर पालन करते हैं। पहला यह कि नैतिकता हमेशा बहाव में होती है। वहाँ नैतिकता होती ही नहीं। दूसरे, आज की नैतिकता कल की नैतिकता नहीं होती।"[5]

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र', खंड 11, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 100)

भारत ने समाजवादी देशों से पंचशील के सिद्धान्त पर समझौता कर गलती की। पंचशील बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण अंग है। चेअरमैन माओ के सिद्धान्त पर विश्वास

करके उन्होंने स्वयं अपने ही देश की बौद्ध जनता से दुराचार का व्यवहार किया। राजनीति में पंचशील का कोई स्थान नहीं है। और समाजवादी देशों में तो बिल्कुल ही नहीं है—ऐसा मत बाबा साहेब ने प्रगट किया। लोकतंत्र प्रधान राष्ट्र होने के नाते भारत ने अन्य लोकतांत्रिक देशों के साथ सम्बन्ध न बनाकर चीन, रूस और अन्य समाजवादी देशों से सम्बन्ध रखने के कारण इस देश को निश्चित ही उसके बुरे परिणाम भोगने होंगे।

बाबा साहेब ने जैसा बतलाया, वैसा ही हुआ। जिन चीन के साथ भारत ने स्नेहपूर्ण सम्बन्ध बनाए थे, उस चीन ने 1962 में सीमा-विवाद का सवाल उपस्थित कर भारत पर हमला किया। उनकी सेना नेफा तथा लद्दाख में प्रविष्ट हुई। भारतीय सेना की नेफा यूनिट ने धैर्य और बहादुरी से उनके आक्रमण को रोका। इसलिए चीन को पीछे होना पड़ा और युद्ध को समाप्त करना पड़ा। फिर भी लद्दाख का कुछ भाग चीन ने छोड़ा नहीं। चीन के इस आक्रमण से बहुत सारी बातें स्पष्ट हो गईं। चूँकि अफ्रीकी और एशियाई देशों का राजनैतिक नेतृत्व चीन ने करना चाहा था। इसलिए लोकतंत्रवादी पड़ोसी भारत के प्रभाव को खत्म करने के लिए, उसकी अर्थव्यवस्था को तहस-नहस किया जाए और पाकिस्तान को विश्वास में लेकर भारत पर आक्रमण किया जाए, इस तरह चीन के आक्रमण करने के पीछे अनेक उद्देश्य थे। चीन के आक्रमण से नेहरु की विदेश-नीति, और विशेष तौर पर चीन-सम्बन्धी नीति धोखादायक थी। यह स्पष्ट हो गया और बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की भविष्यवाणी सच साबित हुई। नेहरु की गलत विदेश-नीति से लद्दाख का भाग भारत को खोना पड़ा। क्या यह राष्ट्रीय नुकसान नहीं है?

डॉ. अम्बेडकर की विदेश-नीति की सत्यता

भारत सरकार ने उपरोक्त घटना से सबक सीखकर आँखें खोलीं और विदेश-नीति में बदलाव किया। 'भारत की अर्थव्यवस्था हम संभाल नहीं सके', इस तरह की बात नेहरु ने कबूल की। 1962 के बाद प्रतिरक्षा पर अधिक खर्च होने से विकास की अन्य योजनाओं के खर्च में कटौती होना स्वाभाविक ही था। भारत की अर्थव्यवस्था खतरे में पड़ गई और चीन ने अपनी विदेश-नीति में बदलाव किया। उधर पाकिस्तान ने चीन की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया, जिसे चीन ने फायदे में देख स्वीकार किया। पाकिस्तान ने 1965 में भारत पर आक्रमण किया और कश्मीर का एक भाग हड़प लिया। यह भी भारत का ही नुकसान था। कश्मीर से सम्बन्धित बाबा साहेब का सुझाव उस समय मान लिया जाता तो पाकिस्तान द्वारा भारत पर हमला करने की नौबत ही नहीं आती। भारत की विदेश-नीति के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर की बात

का विरोध करने का अर्थ ही अनेक संकटों का सामना करना था।

भारत लोकशाही को मानने वाला देश रहा है। इसलिए भारत को अपनी विदेश-नीति को इसी तत्व के आधार पर बनाना चाहिए। चीन, रूस या अन्य कम्युनिस्ट देशों के पिछलग्गू बनने का मोह त्यागना चाहिए। इसी पिछलग्गू की मानसिकता के कारण सीटो का भारत सरकार ने विरोध, इंग्लैंड व फ्रांस को जोड़नेवाला सुरंगी रास्ता, चीन और रूस के दबाव से चीन के गले में फंसा ल्हासा, चीन के साथ किया गया पंचशील समझौता, कश्मीर का विभाजन आदि समस्याओं के बारे में बाबा साहेब के द्वारा किया गया विश्लेषण सही साबित हुआ। अंततः कश्मीर पर कभी न कभी पाकिस्तान, चीन और रूस या इनके अलावा और भी देश हमला कर सकते हैं, यह बाबा साहेब की अनुमान सच साबित हुआ।

भारत में कश्मीर के सवाल पर अब भी गंभीरता से विचार नहीं किया गया तो सम्पूर्ण कश्मीर धोखे में आने की संभावना है। नेहरु की विदेश-नीति के कारण पाकिस्तान और चीन के आक्रमण के बाद ही हमें बाबा साहेब के विचारों की सही कीमत पता चली। इसीलिए आज कश्मीर के सम्बन्ध में बाबा साहेब की विदेश-नीति के माध्यम से दी गई चेतावनी पर गंभीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है।

1. "In our foreign policy we have not been able tomake a distinction between Capitalism and Parliamentary Democracy. The dislike of Capitalism is understandable. But we take care that we do not weaker (n) Parliamentary Democracy and help Dictatorship to grow. It would be like throwing the baby out of the bath but in emptying it of dirty water." (7.10.1951)

   (Khairmode, Vol. 10, P. 159)

2. "We have told that our foreign policy is a policy of peace and friendship. My Hon. friend, Diwan Chaman Lal, called it the Nehru Doctrine provided it was observed at all. Now, if the object of the foreign policy of this country is to maintain friendship and peace throughout the world, I want to know who are our enemies against whom we want to maintain this huge army at a huge cost of Rs. 197 crores."

   (Khairmode, Vol 11, P.15)

3. "But we are told that we have no enemy at all in the world. Then, why this Army is maintained, I do not quite know. Secondly, the only possible enemy, if one may use the word, is probably Pakistan. And that too, on account of Kashmir.

Now, with regard to Kashmir, I hope that this house will have a full apportunity of discussing the question. I did not have time to say anything, nor did I think it right to spend just a new moments on a problem so great as that of Kashmir. But surely the matter is within the charge of the U.N.O., and I do not think that pakistan would be so foolish as to invade Kashmir or to invade this country in the teeth of the U.N.O. decision on the subject. Therefore, again, why are you maintaining this Army? I am quite unable to understand the point."

(Ibid, P. 16)

4. "The keynote of our foreign policy is to solve the problems of other countries, and not to solve the problems of our own. We have here the problem of Kashmir. We have succeeded in solving it. Everybody seems to have forgotten that it is a problem. But I suppose some day, we may wake up and find that the ghost is there. And I find that the Prime Minister had launched upon the project of digging a tunnel connecting Kashmir to India. Sir, I think, it is one of the most dangerous thing that a Prime Minister could do...That might happen the Prime Minister in digging the tunnel, thinks that he alone would be able to use it. He does not realise that a conqueror who comes to the other side and captures Kashmir, can come away straight to Pathankot and probably come into the Prime Minister's House I do not know."

(Ibid, P. 100)

5. "Yes, the Prime Minister has been depending upon what may be called the *Panchsheel* taken by Mr. Mao and recorded in the Tibet treaty of non-aggression. Well, I am somewhat surprised that. The Prime Minister should take *Panchsheel* seriously. The *Pancheel,* as you sir, know it well, is the essential part of the Buddhist religion, and if Mr. Mao had any faith in the *Panchsheel* in politics and secondly not in the politics of a Communist country. The communist countries have two well known principles on which they always act. One is that morality is always in a flux. There is no morality. Today's morality is not tomorrow's morality."

(Khairmode, Vol. 11, P.100)

अध्याय 7

संयुक्त राष्ट्र संघ और कश्मीर का सवाल

> *भारत का पहला कर्तव्य अपने लिए होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ के स्थायी सदस्य कम्युनिस्ट चीन से झगड़ा मोल लेने के स्थान पर भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थायी सदस्य बनने के लिए प्रयास करने चाहिए। यह सब न करके भारत माओ से युद्ध करने में अपना समय लगा रहा है। जैसे वे चँक-कई-शेख के साथ लड़ रहे हैं।*[1]
>
> **-डॉ. बी. आर. अम्बेडकर**

('डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर : चरित्र' खंड 10, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ. 159)

अखिल मानव जाति के भविष्य के लिए विचार हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ केन्द्र बिंदु है। समस्त मानवजाति को शांति और न्याय देना ही संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य कार्य है। एक-दूसरे के विचारों के आदान-प्रदान के लिए तथा सभी की समस्या पर सहकार्य के आधार पर कोई उपाय खोजने की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ एक बहुत ही उपयुक्त संस्था है। ('भूमिका', ले. यशवंतराव चव्हाण, प्रेस्टिज पब्लिकेशन पुणे, पृ. 178, 181, 194) इस विश्व संगठन को कश्मीर की समस्या को सौंप देना चाहिए। या भारत, पाकिस्तान दोनों देशों को यह प्रश्न सौंप दें, इस विषय पर अब तक अनेक बार चर्चा हुई है। आज भी यह चर्चा बंद नहीं हुई है।

यूनो में कश्मीर का सवाल

1948 में भारत ने पाकिस्तान से 'जैसे थे' समझौता किया था। इस वायदे से भी कश्मीर का सवाल हल नहीं हुआ। इसके विपरीत यह सवाल और उलझ गया। भारत के साथ हुए, इस समझौते का उल्लंघन करके पाकिस्तान ने आक्रमण कर उत्तर की ओर मुज्जफरपुर, चिलास गिलगिट, पुंछ आदि करीबन बैयालिस मिल का भूप्रदेश अधिकार में कर लिया। फिलहाल दक्षिण की ओर श्रीनगर, जम्मू, लद्दाख का इतने ही प्रदेश भारत के कब्जे में हैं। पूरे कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के लिए ही पाकिस्तान ने भारत पर 3 अक्तूबर, 1947 और 4 अगस्त, 1965 को हमला किया।

पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खाँ ने दिसंबर, 1958 में कहा था कि, 'कश्मीर पाकिस्तान के लिए राजनैतिक दृष्टि से नहीं बल्कि सैनिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कश्मीर हमारे लिए जीवन-मरण का सवाल है। कश्मीर हमें ही चाहिए। अगर कहने से नहीं मिलता है तो इसके लिए पाकिस्तान को युद्ध करना ही होगा।' ('भीमशक्ति', एच. डी. आवड़े, दि. 26.9.1965) पाकिस्तान सरकार इतना कहकर रुकी नहीं और 1947 को ढाई लाख पाकिस्तानी सैनिक जम्मू-कश्मीर में भेज दिए। पाकिस्तान ने भारत का भाग अपने कब्जे में ले लिया। पंडित नेहरू ने पाकिस्तानी सरकार से सैनिक पीछे लेने की प्रार्थना की। लेकिन उनकी बात पर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। और 'जैसे थे' समझौते का उल्लंघन किया।

आखिर में 25 जनवरी, 1948 के दिन कश्मीर का सवाल संयुक्त राष्ट्र संघ में दाखिल हुआ। उस समय पाकिस्तान ने जाहिर किया कि, भारत पर हमने किसी भी तरह का आक्रमण नहीं किया। हमारी सरकार ने आतंकवादियों को किसी भी प्रकार की मदद नहीं दी। दोनों देशों में मित्रता का सम्बन्ध रहने और हमला करनेवाले घुसपैठियों को रोकने के लिए सभी उपाय हमारी तरफ से हो रहे हैं, ऐसा पाकिस्तान ने कहा। पाकिस्तान ने ऐसा भी दावा किया कि यह पाकिस्तान का हमला नहीं था बल्कि कश्मीर की जनता का हिंदू राजा के खिलाफ विद्रोह था।

भारत ने यूनो में अपना पक्ष बड़े प्रभावशाली ढंग से रखा। 22 अक्तूबर, 1947 के दिन कश्मीर के अधिकृत सरकार की ओर से, मतलब प्रत्यक्ष महाराजा की ओर से भारत में कानूनी शामिलनामा करवा लेने की वजह से कश्मीर का भाग भारत का अंग बन गया है। जम्मू-कश्मीर का भूक्षेत्र हमारे लिए पराया न होकर भारत का ही अविभाज्य भाग है, भारत सरकार ने इस तरह का अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है। पंडित नेहरु ने 10 फरवरी, 1957 के दिन कहा था कि,

> "मैं पाकिस्तान से या अन्य किसी देश से या संयुक्त राष्ट्र संघ से बातचीत करने के लिए तैयार हूँ, बशर्ते दो मूल तथ्य स्वीकार हों। पहला तथ्य यह है कि अक्तूबर, 1947 को कश्मीर भारत का भाग बना। दूसरा तथ्य यह कि पाकिस्तान का कश्मीर पर हमला अनुचित है।"[2]

('द कश्मीर क्वश्चन', ए. जी. नूरानी, पृ. 75)

कश्मीर अक्तूबर, 1947 में भारत का भाग हुआ और पाकिस्तान का कश्मीर पर आक्रमण अयोग्य है, यह दो बातें स्वीकारने के बाद मैं पाकिस्तान अथवा अन्य देश या संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ बातचीत करने को इच्छुक हूँ, ऐसा पंडित नेहरु ने कहा। 1957 में 'Journal of the Indo-Japanese Association', के जुलाई-नवम्बर अंक में पंडित नेहरु की मुलाकात प्रसिद्ध हुई। उसमें उन्होंने यह भूमिका अलग शब्दों में रखी। नेहरु जी कहते हैं-

"कश्मीर निःसंदेह, कानूनी तौर पर, अगर ऐतिहासिक रूप में कहा जाए तो भारत, संघीय भारत का एक भाग है।"[3]

('इकॉनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली', दिसंबर, 1991, पृ. 2961)

ऐतिहासिक, वैधानिक दृष्टि से बोलने पर ही ऐसा उन्होंने प्रतिपादन किया कि, कश्मीर भारत का भाग है। भारत सरकार ने इस प्रकार का अनुरोध किया कि, यूनो को पाकिस्तान को समझाने का प्रयास कर या अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर पाकिस्तान को कश्मीर पर आक्रमण करने से रोकना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से अपेक्षाएँ

संयुक्त राष्ट्र संघ ने कश्मीर के सम्बन्ध में दोनों देशों के वक्तव्यों की वस्तुस्थिति का विश्लेषण किया। उसमें पाकिस्तान की गद्दारी नजर आई। पाक ने राष्ट्र सुरक्षा परिषद और अन्य राष्ट्रों के साथ जो दुर्व्यवहार किया, वह यूनो के सामने आया। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में प्रतिनिधि ओवेन कित्सन ने यह बात मान ली। पाक ने जम्मू-कश्मीर की सीमारेखा पार करके अंतर्राष्ट्रीय नियम का उल्लंघन किया है। अमेरिका के प्रतिनिधि सिनेटर बरेन आस्टिन ने कहा कि, 'जम्मू-कश्मीर राज्य भारत के साथ जब से मिला है, उस समय से ही यह अधिकार भारत का है और इसी कारण भारत वादी बनकर उपस्थित रहा है।'

उसके बाद एक बैठक में नीदरलैण्ड के प्रतिनिधि ने यह माना कि, 1947 में जम्मू-कश्मीर के महाराजा ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए किए, यह राज्य भारत में विलीन हुआ है। भारत सरकार के उस समय के गवर्नर जनरल ने भी इसके लिए मंजूरी दी। भारत-पाकिस्तान, दोनों देशों के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा आयोग की तरफ से एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसमें कहा गया कि पाकिस्तान को कश्मीर में कायदे से अपनी सेना रखने का कोई हक़ नहीं है। सोवियत संघ ने भी कहा कि "कश्मीर का सवाल स्वयं कश्मीर की जनता ने हल करना चाहिए। उनके ही मतानुसार कश्मीर भारत का अभिन्न भाग है। भारत का पक्ष प्रबल होते हुए भी पाकिस्तान ने इस सवाल पर अभी तक अपनी दृढ़वादी नीति ही बरकरार रखी है।

पिछले 14 साल से इस सवाल के समाधान के लिए कोई सिरा मिला नहीं है। तब भी पाकिस्तान के सत्ताधारी हुक्मशाह अयूब ख़ाँ ने इस सवाल को जल्दी से हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ से आग्रह किया। यूनो में हुई बहस से पाकिस्तान को इस बात का पूंरा भरोसा नहीं होने के बावजूद भी कि उनके पक्ष में फैसला होगा, फिर भी उन्होंने उस सवाल का उसी तरह समर्थन करने का प्रयास किया। इसके कई कारण हैं। इस सवाल पर अपनी तरफ से कितने राष्ट्र खड़े होंगे, इस

बात का वे अंदाजा लेना चाहते थे। रूस के तो खुले मन से कश्मीर को शामिल करने के सवाल पर भारत को ही बल दिया था। ब्रिटेन और अमेरिका अपना निर्णय देगा नहीं, यह पहले से ही सिद्ध था। उन्हें पाकिस्तान का पक्ष न लेते हुए अपना विचार देना पड़ेगा, यह भी उतना ही सच था। अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष केनेडी ने तो अप्रत्यक्ष रूप में भारत का पक्ष लेते हुए अपने विचार प्रकट किए थे। ऐसी ही परिस्थिति में पाकिस्तान किसके सहकार्य से संयुक्त राष्ट्र संघ में इस सवाल का समाधान निकालेगा, यह प्रश्न ही था।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मध्यस्थी का परिणाम

कश्मीर के प्रधानमंत्री गुलाम मौहम्मद बख्शी ने जम्मू-कश्मीर के विलय होने के सम्बन्ध में अपनी भूमिका स्पष्ट की। उन्होंने अपनी भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा,

> "स्वयं कश्मीर के महाराजा ने 1947 में अपने राज्य को भारत में विलय करने के लिए स्वयं ही शामिलनामा लिखकर दिया। और उसी तरह कश्मीर की लोकसभा, मतलब जनता द्वारा चुनी हुई संविधान सभा ने इस सम्बन्ध में उस समय के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला की इजाजत से ही स्वीकृति दी है। इसलिए अब कश्मीर का प्रदेश भारत में विलय करने के सम्बन्ध में आम सहमति लेने का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

('प्रबुद्ध भारत', दि. 20 जनवरी, 1962)

प्रधानमंत्री बख्शी की उक्त भूमिका को ध्यान में रखा जाता तो पाकिस्तान को कानूनन यह सवाल संयुक्त राष्ट्र संघ में रखने और झगड़ा करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मध्य में 'डॉ. ग्रॅहम कमेटी' ने जम्मू-कश्मीर के सवाल पर विचार-विनिमय करके और प्रत्यक्ष परिस्थिति का अवलोकन करके एक रिपोर्ट तैयार की थी। उस रपट में भी अंत में यह सवाल उस देश के समझौते और शांति के रास्ते से ही हल किया जाए, इस प्रकार का फैसला दिया है, तो भी कश्मीर का सवाल हल नहीं हुआ। 1947 से 1993 तक संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता से भी यह सवाल हल नहीं हुआ। बल्कि लोभ के कारण भारत ने अपना ही नुकसान कर लिया। शामिलनामे के मुताबिक व संविधान के अनुसार कश्मीर का कानूनन भारत में विलय हुआ है। परंतु क्या आज प्रत्यक्ष स्थिति ऐसी है? कश्मीर का थोड़ा भाग पाकिस्तान के पास है और थोड़ा भाग भारत के पास है। उसमें भी 1963 में पाकिस्तान के विदेशमंत्री भुट्टो और चीन के विदेशमंत्री मार्शल चेन यी के समझौते के अनुसार कश्मीर का 2055 वर्ग मील सीमा क्षेत्र चीन में चला गया। भारत के 'जैसे थे' वायदे की और संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता का क्या यही परिणाम था?

नेहरु की अक्षम्य गलती

"संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से यह सवाल हल तो हुआ नहीं, बल्कि उलझता ही जाएगा।" इस तरह की घोषणा डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने की थी, जो सच हुई। जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और कश्मीर के महाराजा ने उसी समय भारत में कश्मीर के विलय होने के आश्वासन की मदद माँगी थी। भारत ने भी उस समय मदद देकर कश्मीर की स्वतंत्रता की रक्षा की। कश्मीर प्रांत के शामिलनामे का सवाल सरल और सुलभ होने से हमारी सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ में जाना नहीं चाहिए था। पाकिस्तान ने ऐसा किया भी तो चलेगा। इस तरह का स्पष्ट इशारा डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने अपने मंत्रिमंडल में दिया था। प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु तो इस सवाल को यू. एन. ओ. में ले गए। उस समय भारत सरकार के मंत्रिमंडल ने डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की इस बात को नहीं सुनने से आज भी जम्मू-कश्मीर परेशानी में है।

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के सलाहनुसार कश्मीर मुक्ति के लिए भेजे गए महार बटालियन के वीरों ने जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण करनेवालों को सीमाप्रांत तक भगा दिया था। इन वीरों को लड़ने के लिए पूरी तरह से अवसर नहीं मिला। इसके विपरीत पाक फौज के साथ संघर्ष करने के लिए जो अवसर मिला था, उसे भारत सरकार ने धूर्त्तता से टाल दिया था और पाक की इस चढ़ाई की नीति के विरोध में कश्मीर के सवाल को फरियादी के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ को दिया संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मध्यस्थी करने से इस सवाल का हल निकल आएगा, ऐसा भारत सरकार को लगा था, परंतु नेहरु की गलती के कारण उसके परिणाम आज भी देश को भोगने पड़ रहे हैं।

इस घटना पर टिप्पणी करते समय 'भीमशक्ति' ने अपने संपादकीय लेख "भारतीय राजनैतिक स्थिति में कश्मीर" में लिखा था कि,

> ''पिछले इतिहास की गलतियों को दुहराना राज्यकर्त्ताओं की बड़ी भूल होगी। उससे राष्ट्र की बड़ी हानि होगी। आजाद कश्मीर को मुक्त करने की समस्या उसी गलती का परिणाम है। भारत के रणबांकुरे जंगली हमलावरों के नाम कश्मीर में हुए आक्रमण का परिमार्जन कर जब पाकिस्तानी फौज को खदेड़ रहे थे, उसी समय समझौता कर कश्मीर-प्रश्न सुरक्षा मंडल को सौंप कर 'सीज फायर लाइन' का निर्माण हुआ। कुछ राजनैतिक पंडितों ने, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने भी चेतावनी देकर आग्रह किया था कि सम्पूर्ण कश्मीर मुक्त किए बिना यह प्रश्न सुरक्षा मंडल को न सौंपा जाए, किन्तु पं. नेहरु ने यह बात नहीं मानी। परिणामतः 'आजाद कश्मीर' पाकिस्तान का

गुलाम बनाया गया और वह भारत की एक जटिल समस्या हो गई। राष्ट्र मंडल उसे न तो हल करता है और न ही अपना हाथ ही उससे अलग करता है।''

('भीमशक्ति', रवि. दि. 29.8.1965)

डॉ. अम्बेडकर की सूझबूझ वाली भूमिका

डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए अनेक उपाय सुझाए थे, परंतु नेहरु सरकार ने उनके विचार को नजरअंदाज कर यह प्रश्न और उलझा दिया। 1947 में घुसपैठियों की मदद से पाक ने जब जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण किया था, उस वक्त महार बटालियन की शक्ति से संपूर्ण कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने की डॉ. अम्बेडकर की योजना थी। परंतु वहाँ भी नेहरु ने अड़ंगा लगा दिया और परिणामस्वरूप युद्ध विराम हुआ। इससे आधा कश्मीर का भाग पाकिस्तान ने हड़प लिया। भारत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं ले जाना चाहिए, इसके लिए डॉ. अम्बेडकर ने नेहरु को सलाह दी थी। उस तरफ ध्यान न देकर नेहरु यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गए और वह प्रश्न ज्यादा ही जटिल हो गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत ने अपनी स्थिति रखने का प्रयास किया था उस समय डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर के विभाजन की महत्वपूर्ण जानकारी दी थी। लेकिन अनेक लोगों ने उनकी आलोचना की थी। कश्मीर के विभाजन का समर्थन करते हुए बाबा साहेब ने 'नवशक्ति' को साक्षात्कार देते हुए स्पष्ट कहा था कि,

"मान लीजिए, हिंदू और मुसलमानों का एक संयुक्त परिवार होता और वे एक दूसरे से अलग रहने का निश्चय कर लेते तो क्या उनकी संयुक्त जायदाद का विभाजन करना चाहिए था? कश्मीर और हैदराबाद ये दो राज्य विभाजन के बाद बचे थे। हैदराबाद में हिंदू बहुसंख्यक होने के कारण वह भारत में आसानी से विलय हो गया और अब कश्मीर बचा। उसके लिए भारत की भूमिका शुरू से ही पकड़ो और छोड़ों की रही। युद्ध हुआ और हम संयुक्त राष्ट्र संघ के पास गए। अब हम सीमा समिति बनाकर कश्मीर का भविष्य तय करनेवाले हैं। आज हम अपने संरक्षण के खर्च का भार उठा नहीं सकते। ऐसी स्थिति में हम कितने दिन इसे लटकाकर रख सकते हैं?"

('डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर', चरित्र खंड 10, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ.217)

क्या कश्मीर में प्रादेशिक आम सहमति (Local prebiscite) होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बाबा साहेब कहते हैं,

"कश्मीर में महत्वपूर्ण बात एक ही है। वहाँ हिंदू मुस्लिमों की ऐसी मिलीजुली बस्तियाँ ज्यादा नहीं हैं। जम्मू और लद्दाख हिंदू-बौद्ध के भाग हैं।

आज कश्मीर का प्रश्न जिस प्रकार से हल किया जा रहा है, उसका भविष्य असुरक्षित है और नेहरु उसका उपयोग करना चाहते हैं। समझ लीजिए, इस आम सहमति में भारत की पराजय हुई तो वहाँ के हिंदू और बौद्धों की क्या स्थिति होगी? क्या पूर्व बंगाल जैसी पुनरावृत्ति नहीं होगी? क्या निर्वासित लोगों का नया प्रश्न उपस्थित नहीं होगा? ('उक्त', पृ. 217)

जब बाबा साहेब ने कश्मीर के विभाजन की माँग की थी, उस समय उनके ऊपर जातीयता का आरोप लगाया गया, परंतु इस आरोप से वे कभी डरे नहीं। पाकिस्तान से भारत को अलग करो, यह उनका राष्ट्रीय विचार था और ऐसा ही बाद में हुआ। उसी विभाजन का यह आखिरी भाग है, ऐसा डॉ. अम्बेडकर का मत था। आम सहमति के झंझट में न पड़कर सीधे-सीधे कश्मीर का विभाजन करना चाहिए, इस माँग पर जातीयता का आरोप लगाने वालों को बाबा साहेब ने स्पष्ट शब्दों में कहा था,

"कश्मीर के हिंदू और बौद्धों को बचाने के लिए मैं कह रहा हूँ विभाजन करो। इसकी वजह यह है कि लोग हमारे धर्म तथा संस्कृति के हैं और उन्हें बचाना कौन-सी जातीयता है? ('उक्त', 216)

इसी साक्षात्कार में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर पर जातीयता का जो आरोप लगाया गया है, उसका खण्डन करते हुए वे आगे कहते हैं-

"अपने धर्म और संस्कृति के नाते मुझे यह स्वीकार नहीं होगा। हम जीवन में सत्य का पालन करने वाले लोग हैं। अपने देश में एक प्रकार का बौद्धिक पलायनवाद प्रवेश कर गया है। इस वस्तुस्थिति से आँखें मूंदकर एक प्रकार की बौद्धिक कसरत में हम मशगूल होते हैं, जो आत्मघाती है। इसीलिए हम इस सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय नहीं ले सकते।" ('उक्त', पृ. 217)

बौद्धिक पलायनवाद कश्मीर के लिए घातक

कश्मीर के बारे में हमें स्पष्ट होगा कि नेहरु का बौद्धिक पलायनवाद और बौद्धिक कसरत से कश्मीर के प्रश्न को नुकसान ही होगा। 1947 से अभी तक करोड़ों रुपयों की बर्बादी भारत सुरक्षा के नाम पर हो रही है। अगर नेहरु सरकार ने उस समय डा. अम्बेडकर की सलाह मानी होती तो कश्मीर का प्रश्न कब का सुलझ जाता और हर वर्ष सुरक्षा के नाम पर होनेवाले करोड़ों रुपए का खर्च कल्याणकारी कार्यों में लगाया जा सकता था।

आज भी कश्मीर की समस्या उतनी ही गंभीर बनी हुई है। ब्रिटेन के पंत प्रधान जॉन मेजर और 27 जनवरी, 1993 को रूस के राष्ट्राध्यक्ष बोरिस एल्तसिन भारत में आए। बड़े राष्ट्रों के दोनों प्रमुखों ने कश्मीर के सवाल पर चिंता व्यक्त

की। उन्होंने सांप्रदायिकता को खत्म करने की आशा व्यक्त की। ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर के अनुसार कश्मीर के प्रश्न को हल करने के लिए शिमला समझौते के अनुसार भारत-पाक में बातचीत होना चाहिए, उसके लिए उन्होंने तीन सूत्री उपाय सुझाए, जॉन मेजर ने प्रधानमंत्री पी. व्ही. नरसिंहराव को कहा कि, "शिमला समझौते' के अनुसार दोनों देशों में राजनैतिक संवाद प्रक्रिया शुरू करने के साथ ही कश्मीर में मानव अधिकारों की सुरक्षा होनी चाहिए। वहाँ के आतंकवादियों को जो विदेशी समर्थन मिलता है, उसे रोकना हमारी राय में सर्वोत्तम मार्ग हो सकता है।

('दैनिक लोकमत', नागपुर, 26 जनवरी, 1993)

परंतु आज भी भारत की कश्मीर प्रश्न के बारे में जो नीति है, उसमें जिद नजर आती है। तत्कालीन विदेशमंत्री श्री दिनेश सिंह ने कश्मीर के प्रश्न को हल करने के लिए किसी भी तृतीय पक्ष की मध्यस्थता नकारी और चीन, रूस अमेरिका और प. एशिया के भारत के संबंधित विभिन्न प्रश्नों को जो उत्तर दिए, उसमें उन्होंने कहा कि हमारे पड़ोसी देश के पास अणुशस्त्रों की जो क्षमता बढ़ रही है, तब अण्वस्त्र प्रसारबंदी समझौते पर हस्ताक्षर कर हमारे सामने के आणविक अस्त्रों विकल्प बंदी करने की हमारी इच्छा नहीं है। इसलिए हम इस पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। ('दैनिक लोकमत', 24 जनवरी, 1993) यह नीति ऊपरी तौर पर देश के भलाई की लग रही हो। फिर भी डॉ. अम्बेडकर द्वारा उद्धृत किया हुआ बौद्धिक पलायनवाद और कसरत करके निर्णय लेने की घातक आदत आज भी मंत्रियों में आ गई है, ऐसा ही कहना होगा।

1. "India's first duty should be to herself. Instead of fighting to make Communist China a permanent member of the U.N.O. India should fight for getting herself recognised as the permanent member of the U.N.O., Instead of doing this India is spending herself in fighting the battle of Mao as against Chiangkai shek."

   (Khairmode, Vol. 10, P. 159)
2. "I am willing to talk with pakistan or any country or UN provided two basic facts are accepted. One basic fact is that Kashmir became part of India in October, 1947. The other basic fact is that of Pakistan's unprovoked and improper invasion of Kashmir."

   ('The Kashmir Question' by A.G. Noorani, P. 75)
3. "Kashmir is, undoubtedly, that is legally speaking, historically speaking, a part of India, a part of the Union of India."

   ('Economic and political weekly', Dec. 21, 1991, P. 2961)

अध्याय 8

भारतीय संविधान की धारा 370

> *मैं नहीं चाहता कि भारतीय के रूप में हमारी वफादारी थोड़े रूप में भी किसी अन्य स्पर्धा के लिए प्रभावित हो। भले ही वह वफादारी हमारे धर्म, हमारी संस्कृति या हमारी भाषा से उत्पन्न हुई हो। मैं चाहता हूँ कि, सभी लोग पहले और बाद में भी भारतीय ही रहे और इसके अलावा और कुछ नहीं।* —डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस', खंड 2, पृ. 195)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर भारतीय संविधान के शिल्पकार हैं, यह सभी को मालूम है। जब हम संविधान के निर्माण का इतिहास देखते हैं तो यह जिम्मेदारी प्रमुखता से डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर पर ही क्यों सौंपी गई, यह सवाल हमारे सामने आता है। इस सवाल का विश्लेषण करते समय हमारे ध्यान में यह आता है कि सबसे पहले 1946 के मध्य में संविधान समिति की स्थापना हुई थी। 1946 के आरंभ में भारत वर्ष में चुनाव हुए, उसमें जो चुने हुए जनप्रतिनिधि थे, उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को संविधान समिति में भेजा। उस चुनाव में वस्तुतः दो पक्ष ही थे, एक काँग्रेस और दूसरा मुस्लिम लीग। उसकी वजह से संविधान सभा में प्रतिनिधि भेजने की जिम्मेदारी वल्लभभाई पटेल और बेरिस्टर जिन्ना पर आई। इन दोनों ने अपनी-अपनी मर्जी के अनुसार संविधान सभा में प्रतिनिधि भेजने का प्रयास किया। वल्लभभाई की दृष्टि में डॉ. अम्बेडकर विपक्ष में होने के कारण, उन्होंने अपनी सूची में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का नाम रखा ही नहीं। बेरि. जिन्ना का तो उन्हें लेने का कोई प्रश्न ही नहीं था। जिनको आज भारतीय संविधान का शिल्पकार कहकर गौरव किया जाता है, उन्हीं डॉ. अम्बेडकर का संविधान समिति में साधारण प्रतिनिधि के रूप में प्रवेश रोक दिया गया था। यह बात आश्चर्यजनक है।

डॉ. अम्बेडकर का अपेक्षित संविधान

डॉ. अम्बेडकर को संविधान सभा में बड़ी मुश्किल से लिया गया, और वह भी बंगाल के मुस्लिम लीग के सहयोग से। उस संविधान समिति की कुछ प्रारंभिक

बैठकें हुईं, उसमें स्वतंत्र भारत की संविधान के स्वरूप के सम्बन्ध में हुई प्राथमिक कामकाज में डॉ. अम्बेडकर ने बड़ी लगन से भाग लिया और संविधान सभा को संविधान का प्रारूप भी सादर प्रस्तुत किया था। यह प्रारूप आगे चलकर 'स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटीज' नाम से प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने राज्य समाजवाद की संकल्पना रखी थी। स्वतंत्रता, समता, बंधुता, सामाजिक न्याय, लोकतंत्र, इन तत्वों को सच्चे अर्थ में मूर्त स्वरूप देने के लिए आर्थिक नींव होनी चाहिए, इसलिए जमीन और प्रमुख उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए, इसका भी उन्होंने ढाँचा तैयार किया। डॉ. अम्बेडकर को अभिप्रेत यही सच्चा संविधान था। इसी संविधान में उनके स्वतंत्र भारत का स्पष्ट चित्र और जीवननिष्ठा अभिव्यक्त हुई है।

1947 में भारत और पाकिस्तान का विभाजन हुआ। उससे संविधान सभा का भी विभाजन हुआ। स्वतंत्र भारत में नेहरू के द्वारा व्यक्त होनेवाली भारतीय जनता की आशा, आकांक्षाएँ और वल्लभभाई की नीति से निश्चित होनेवाला पूंजीपति, सामंतशाही वर्गीय हित सम्बन्ध इन दोनों का मिलाप कर उसको संविधान में स्थान देना, यह कार्य कोई आसान नहीं था। उस मुश्किल कार्य को करने की जिम्मेदारी का प्रारूप कमेटी के अध्यक्ष के नाते डॉ. अम्बेडकर पर आई। भारत के सर्वश्रेष्ठ कानूनविद् और कुशल संविधान मर्मज्ञ के नाते उन्होंने अपनी जिम्मेदारी उत्कृष्ट तरीके से निभाई। यह कार्य करते हुए उन्हें अनेक बार समझौता-नीति भी अपनानी पड़ी। उन्हें अपनी विचारधारा के प्रतिकूल कई बातों का समावेश संविधान में करना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर के भारतीय संविधान के शिल्पकार होने के बावजूद भी यह संविधान उनके विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करता, ऐसा लगता है। इसलिए डॉ.अम्बेडकर के द्वारा लिखा गया अपेक्षित संविधान का मसौदा, अर्थात 'स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटीज' और 'भारतीय संविधान' इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करना जरूरी है।

भारतीय संविधान : एक महत्वपूर्ण दस्तावेज

भारतीय संविधान का सही शिल्पकार कौन? इस तरह के सवाल आज भी उठाए जाते हैं। इस सवाल की चर्चा करने के बजाय प्रत्यक्षतः डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान निर्माण के बारे में क्या कहते हैं, यह देखना ही उचित है। 16 जुलाई, 1952 के राज्यसभा के अधिवेशन में डॉ. अम्बेडकर ने बड़े उद्वेग से कहा था कि,

> "अध्यक्ष महोदय, हम परम्परा के वारिस हैं। लोग मुझे कहते हैं कि, अरे, आप तो संविधान के निर्माता हैं। मेरा जवाब है कि, मैं तो केवल वाहक हूँ। मुझे जो भी करने के लिए कहा गया, वह अधिकांश मैंने अपनी इच्छा के खिलाफ किया है।"

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' : खंड-11, ले. चां. भ. खैरमोडे, पृ.51)

संविधान और प्रांत रचना करते समय काँग्रेस पक्ष के आगे ड्राफ्टिंग कमेटी को नाक रगड़ना पड़ा। और हमें भी समय पर जैसा चाहिए था, वैसा संविधान तैयार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस समिति में हमारा महत्व गाड़ी में जुते घोड़े से ज्यादा नहीं था, यह भी डॉ. अम्बेडकर ने कहा है। आगे उन्होंने यह भी कहा कि, "ऐसी परिस्थिति में तैयार किया हुआ संविधान किसी के भी हित में नहीं है और ऐसा संविधान जलाने की भी बारी आएगी तो मैं ही सबसे पहले इसे आग लगाऊँगा। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के सम्बन्ध में व्यक्त किया उद्वेग अर्थपूर्ण था, परंतु उन्होंने जो संविधान लिखा, उसके लिए उतना ही उनको अभिमान था। संविधान के चौथे संशोधन के सम्बन्ध में राज्यसभा के 19 मार्च, 1955 को दिए गए भाषण में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि,

> "भारतीय संविधान एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज है। और संविधान के जानकारों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया। यह संविधान इतना सुलभ और सुगम है कि अंग्रेजी समझनेवालों को वह निश्चित तौर पर समझ में आता है, इसलिए उस पर अलग से कुछ बताने की जरूरत नहीं है।"

(उक्त : पृ. 148)

संविधान : एक पवित्र मंदिर

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर कभी संविधान को जलाने की बातें करते हैं, तो दूसरी ओर उसकी प्रशंसा भी करते हैं। तब उनकी भूमिका कभी-कभी संदिग्ध लगती है। किन्तु इस संदर्भ में भी उनकी भूमिका बिल्कुल स्पष्ट समझ में आती है।

डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि,

> "हमने संविधान के रूप में एक पवित्र मंदिर बनाया है, परंतु उसमें भगवान् की स्थापना करने से पूर्व ही राक्षस प्रवेश कर गए और उन्होंने उस मंदिर को भ्रष्ट किया। तब क्या उसे जलाना उचित नहीं?"

('उक्त', पृ. 149)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने सवालकर्त्ता को जवाबी सवाल किया। राज्यसभा में इसी भाषण में उन्होंने संविधान संशोधन के बारे में अपनी भूमिका स्पष्ट कर दी थी। राज्यसभा को संबोधित करते वक्त उन्होंने कहा था कि, "भारत का संविधान, स्वतंत्रता, समता, बंधुता पर आधारित है और भारतीयों को इस संविधान में मूलभूत अधिकार दिए हैं। संविधान में सुधार करके उसकी पवित्रता नष्ट करना और मूलभूत अधिकारों में बाधा डालना राजनीतिज्ञों को शोभा नहीं देता। संविधान की धारा का अर्थ न्यायालय में जैसा लगाया जाएगा, उसी को राजनीतिज्ञों को स्वीकारना चाहिए।

तभी उस संविधान के प्रति भक्ति और मूलभूत अधिकारों के प्रति लोगों में प्रेम उत्पन्न होगा। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के ये विचार, आज के सम्बन्ध में निश्चित ही माननीय हैं, और अभी तक संविधान में जो संशोधन किए, उसे भी दिशा दिखाने में मार्गसूचक हो सकेगा।

भारतीय संविधान की 370 वीं धारा

भारतीय संविधान का निर्माण कैसे हुआ और डॉ. अम्बेडकर का संविधान सभा में प्रवेश कैसे हुआ और उनके संविधान संबंधी विचार और दिए गए उचित जवाब़ आदि पर विस्तार से सोचा गया। वह सिर्फ इसीलिए कि इसी पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान में 370 वीं धारा पर विचार करना होगा। भारतीय संविधान में यह धारा 1949 में समाविष्ट की गई। तब से इस धारा के विषय में देशभर में विवाद शुरू हुआ। भाजपा जैसी हिन्दुत्ववादी राजनीतिक संगठन ने भी इस धारा को रद्द करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस धारा के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति का विवेचन करने के लिए डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों का आधार लिए बिना जो सत्यता है, वह सामने नहीं आएगी। इसलिए इस धारा की पार्श्वभूमि को ध्यान में रखना जरूरी है।

कश्मीर के सम्बन्ध में जनमत का प्रश्न उपस्थित होने के कारण और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 1948 में जनमत-संग्रह का प्रस्ताव मंजूर करने से एक नई परिस्थिति निर्मित हुई। रिपोर्ट के अनुसार जनमत-संग्रह कश्मीर घाटी तक ही मर्यादित किया गया था। शेख अब्दुल्ला ने इसका फायदा उठाने का प्रयास किया। उन्होंने पं. नेहरु पर ऐसा दबाव डाला कि, यदि भारत को कश्मीरी मुस्लिमों के मतों की जरूरत है तो कश्मीर की अस्मिता को स्थायी रूप में बरकरार रखना आवश्यक है। अब्दुल्ला की भी यही इच्छा थी कि, कश्मीर पर केंद्र सरकार का अधिकार संरक्षण, विदेश-नीति और संचार विभागों तक ही मर्यादित रहना चाहिए। कश्मीर के लिए अलग नागरिक संहिता होनी चाहिए और भारतीय जनता को कश्मीर में किसी भी तरह का अधिकार नहीं होना चाहिए, यही उनकी माँग थी। पं. नेहरु ने शेख अब्दुल्ला को तत्कालीन विधिमंत्री डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के पास भेजा। शेख अब्दुल्ला की बातें सुनने के बाद डॉ. अम्बेडकर ने शेख अब्दुल्ला को जो कहा, उस संदर्भ में प्रो. बलराज मधोक लिखते हैं कि, 'उन्होंने (डॉ. अम्बेडकर ने) शेख अब्दुल्ला को स्पष्ट कहा था कि,

> "आपकी इच्छा के अनुसार भारत को तुम्हारी रक्षा करनी चाहिए। आपके प्रदेश में रास्ते बनाने चाहिए। आपके प्रदेश में अनाज की आपूर्ति करनी चाहिए। कश्मीर को भारत की बराबरी का अधिकार प्राप्त होना चाहिए, परंतु भारत सरकार को अत्यन्त सीमित अधिकार होने चाहिए और भारतीय जनता को

कश्मीर में कुछ भी अधिकार नहीं होने चाहिए। इन बातों के लिए भारत के विधि मंत्री के नाते मान्यता देना, भारत के हित में विद्रोह करना होगा। और मैं यह कभी नहीं करूँगा।"
('तरूण भारत', 18.3.92)

इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान के निर्माता का संविधान की 370 वीं धारा से स्पष्ट विरोध था। भारतीय संविधान में इस तरह की ऐसी कई धाराएँ हैं जिनको डॉ. अम्बेडकर ने क्रेवल राजनीतिक समझौते के रूप में सम्मिलित किया। उनमें से 370 वीं धारा भी एक है। फिर यह सवाल उपस्थित होता है कि संविधान में यह धारा कैसे सम्मिलित की गई?

डॉ. अम्बेडकर ने शेख अब्दुल्ला को बड़ा सटीक जवाब दिया था। उसको सुनकर वे नेहरु के पास चले गए। नेहरु ने शेख अब्दुल्ला को गोपालस्वामी अय्यंगर के पास भेजा। संविधान सभा इस तरह का किसी भी प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार करने की मानसिक स्थिति में नहीं थी। तब श्री अय्यंगर सरदार वल्लभभाई पटेल के पास गए। और उनसे कहा कि, इस सम्बन्ध में आप कोई न कोई रास्ता जरूर निकालिए। क्योंकि यह पंडितजी की इज्जत का सवाल है। और उन्होंने शेख अब्दुल्ला को उस तरह का अभिवचन भी दिया, ऐसा उन्होंने कहा। सरदार वल्लभभाई पटेल ने स्थिति की गम्भीरता को समझ लिया और 370 की धारा को मंजूर करवा लिया। और वह भी तब, जब पंडित जवाहरलाल नेहरु विदेश दौरे पर थे।

370 वीं धारा का स्वरूप

भारतीय संविधान की धारा 370 दिनांक 17 अक्तूबर, 1949 को संविधान सभा में चर्चा के लिए रखी गई। गोपालस्वामी अय्यंगर ने इस धारा का प्रस्ताव सदन के सामने रखा। इस प्रस्ताव पर हुई बहस में मौलाना हजरत मोहनी, के. संतनम, महावीर त्यागी आदि ने हिस्सा लिया। गोपालस्वामी अय्यंगर ने इस धारा के हर पहलू पर पार्श्वभूमि के साथ विश्लेषण किया और प्रस्तावित धारा स्वीकृत करवाकर उसको भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। वह धारा निम्न प्रकार है–

धारा 370–जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में अस्थायी व्यवस्था

1. इस संविधान में कुछ भी क्यों न हो (क) धारा 238 की व्यवस्था जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में लागू नहीं होगी।

(ख) उक्त राज्य के लिए कानून बनाने की संसद की शक्ति निम्न बातों तक सीमित रहेगी।

(एक) कोई संस्थान 'डोमिनिअन ऑफ इंडिया' में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में नियमन करनेवाले शामिलनामे में जिनके सम्बन्ध में डोमिनिअन के विधिमंडल को उस संस्था के लिए कानून बनाने का हक़ होगा, इस तरह के प्रावधान के रूप

में निर्देशित किए गए प्रावधानों से जो सदृश्य होने की राष्ट्रपति ने राज्य सरकार की सलाह लेकर घोषित किया है। उस संघ सूची और समवर्ती सूची में सम्मिलित प्रावधान, (दोन) उस राज्य सरकार की सहमति से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा जो निर्दिष्ट करेंगे, इस प्रकार की उक्त सूची के अन्य प्रावधान।

खुलासा : इस धारा के प्रयोजनार्थ, राज्य की सरकार का अर्थ, राष्ट्रपति ने जम्मू और कश्मीर के महाराजा के रूप में स्वीकृत किए हुए महाराजा के दिनांक व मार्च थमनभ की उद्घोषणा के मुताबिक उस समय सत्तारूढ़ हुई मंत्री परिषद की सलाह से कार्य करनेवाली व्यक्ति ऐसा है।

(घ) इस संविधान के अन्य व्यवस्था में से राष्ट्रपति के आदेश के द्वारा निर्दिष्ट किए जाएँगे ऐसी व्यवस्था, इस प्रकार के निर्दिष्ट अपवाद और परिवर्तन आदि उस राज्य के सम्बन्ध में लागू होंगे।

किन्तु उपखंड (ख) परिच्छेद (एक) में निर्दिष्ट किए हुए, संस्थान के शामिलनामे में सम्मिलित प्रावधानों से सम्बन्धित होगा, इस प्रकार का कोई भी आदेश (हुक्म) राज्य सरकार की सलाह लिये बगैर निकाला नहीं जाएगा।

किन्तु और यह भी कि, उक्त निर्दिष्ट किए हुए प्रावधानों से सम्बन्धित बातों के अलावा अन्य प्रावधानों से सम्बन्धित हो इस प्रकार का कोई भी आदेश उस सरकार की सहमति के बगैर निकाला नहीं जाएगा।

2. यदि खंड (1) उपखंड (ख) परिच्छेद (दो) में या उस खंड के उपखंड (घ) में से दूसरे प्रावधान में निर्दिष्ट किए हुए राज्य सरकार की सहमति उस राज्य का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा निमंत्रित किए जाने से पहले दी गई होती तो, इस तरह की संविधान सभा ने उस सहमति के सम्बन्ध में फैसला करना चाहिए, इसलिए वह उसके सामने प्रस्तुत की जाएगी।
3. इस अनुच्छेद के पूर्वगामी प्रावधान में कुछ भी कहा गया हो, तब भी राष्ट्रपति को, वह निर्दिष्ट करेगा उस तिथि से यह अनुच्छेद अमल में लाने पर रोक होगी या उस तिथि से निर्दिष्ट अपवादों के साथ और संशोधन के साथ अमल में लाया जाएगा, इस तरह अधिसूचना द्वारा घोषित किया जाएगा।

किन्तु, राष्ट्रपति ने इस प्रकार की अधिसूचना जारी करने से पहले, खण्ड (2) में निर्दिष्ट राज्य के संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

अब राज्यपाल

1. विधि मंत्रालय, अधिसूचना क्रमांक सी.ओ. 48, दिनांक 14 मई, 1954 भारत का राजपत्र असाधारण, भाग-2 उपविभाग-3, पृ. 821 सहित प्रकाशित हुआ और

समय-समय पर संशोधित किया हुआ 'संविधान (जम्मू और कश्मीर को लागू करना) आदेश, 1954 देखिए.

(भारत का संविधान : (1 मई, 1979 तक संशोधित भारत सरकार, पृ. 125, 126)

श्री अय्यंगर का प्रतिपादन

संविधान सभा में 370 वीं धारा के सम्बन्ध में गोपालस्वामी अय्यंगर ने काफी विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने इसकी भी पूर्वपीठिका बताई है कि यह धारा सिर्फ जम्मू और कश्मीर से किस प्रकार संबंधित है। उन्होंने कश्मीर के इतिहास का आधार देकर इस बात का भी विश्लेषण किया है कि कश्मीर भारत की एक इकाई होने के बावजूद भी अन्य राज्यों से अलग क्यों है? अन्य राज्यों की तुलना में कश्मीर को अलग दर्जा क्यों दिया गया? इस प्रकार के मौलाना हजरत मोहनी के सवाल का जवाब देते हुए श्री अय्यंगर ने कहा, कि "कश्मीर में अन्य राज्यों की तुलना में खास प्रकार की स्थिति होने के कारण यह फर्क किया गया है। अन्य राज्यों की तरह कश्मीर में भी स्थिति निर्माण होने पर वह राज्य भी अन्य राज्यों की तरह होगा। फिलहाल कुछ कारणों की वजह से उस तरह की स्थिति उपलब्ध नहीं है। इसलिए कश्मीर को एक स्वतंत्र इकाई का दर्जा दिया गया है।" ('सी. ए. डी., वाल्यूम 10, पृ. 426) यह अय्यंगर ने स्पष्ट किया है।

उन्होंने कहा कि, जम्मू-कश्मीर में युद्ध की स्थिति, सीमा-विवाद, कुछ हिस्सा आतंकवादियों के कब्जे में है और संयुक्त राष्ट्र संघ में यह सवाल उलझा हुआ है। इस स्थिति के साथ मुकाबला करते हुए उस राज्य के प्रशासन ने अन्य राज्यों की तरह सामान्य स्थिति पैदा करने की निहायत जरूरत होने की बात पर बल दिया। इस धारा के हर हिस्से का विश्लेषण किया और अंत में एन. गोपालस्वामी अय्यंगर ने कहा,

> "इस धारा का परिणाम यह हुआ कि, जम्मू और कश्मीर भारत की एक अभिन्न इकाई है और वह भारत की एक इकाई के रूप में रहेगा। और भविष्य में वह संघराज्य की इकाई ही रहेगा और केंद्र सरकार को अधिकार प्राप्ति या अन्य राज्य को सम्मिलित होने सम्बन्धित कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। और संविधान सभा को उस सम्बन्ध में ज्यादा से ज्यादा जानकारी हासिल कर उस पर उचित कदम उठाने का अधिकार प्राप्त होगा। एक निश्चित निर्णय तक आने के बाद वह सभा अध्यक्ष को वह धारा रद्द करने का या उसमें परिवर्तन कर या अपवादात्मक इस्तेमाल करने के सम्बन्ध में सिफारिश करेगी।"

('सी.ए.डी. वॉल्यूम', 10, पृ. 427)

अय्यंगर ने धारा 370 से सम्बन्धित अपने भाषण में कई महत्वपूर्ण बातों का जिक्र किया है और उस धारा के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने यह भी सूचना दी कि, अन्य राज्यों की तरह कश्मीर में स्थिति अनुकूल हुई और संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिबंधों से मुक्त होने पर संविधान की धारा 370 भी रद्द की जा सकती है।

पं. नेहरु का अभिवचन

कश्मीर के प्रधान मंत्रीपद से इस्तीफा देने के बाद बख्शी गुलाम मोहम्मद ने यह कहा था कि, 'संविधान की धारा 370 स्थायी है और कश्मीर की जनता का भविष्य उससे जुड़ा हुआ है। इन दो निवेदनों के संदर्भों में भारत सरकार की निश्चित भूमिका क्या है, इस बात को मैं जानना चाहता हूँ? इस तरह का सवाल लोकसभा सदस्य ने पंडित जवाहरलाल नेहरु को पूछा था। इस सवाल के जवाब में 27 नवम्बर, 1963 को लोकसभा में प्रश्नोत्तर काल में जवाब देते हुए पंडित नेहरु ने कहा-

> "मैं यह नहीं मानता कि धारा 370 स्थायी है। सभागृह को शायद ज्ञात होगा कि यह अस्थायी व्यवस्था है। वह संविधान का स्थायी हिस्सा नहीं है। जब तक वह है, तब तक वह रहेगा। सच्चाई यह है कि उस पर काफी बहस हुई है। पिछले कुछ वर्षों में इस तरह के ऐसे कई निर्णय किए गए हैं कि जिसकी वजह से कश्मीर के भारत के साथ काफी करीबी सम्बन्ध बन गए हैं। कश्मीर भारत में सम्मिलित हो गया है इसके बारे में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरु ने आगे यह भी कहा कि,

"मैं पुनः यह बताना चाहता हूँ कि वह पूरी तरह से सम्मिलित हो गया है। बाहरी लोगों ने कश्मीर में जमीन खरीदने के विरुद्ध और वह नियम उचित है, सिर्फ यही मैंने कहा था। किन्तु हमें ऐसा लगता है कि, धारा 370 पूरी तरह से समाप्त होने की प्रक्रिया जारी है। और आनेवाले एक दो-माह में इस तरह के निर्णय लिए जाएँगे कि जिससे वह प्रक्रिया पूरी हो जाएगी। और हम लोगों ने उस प्रक्रिया को पूरी होने में कोई रूकावट नहीं डालनी चाहिए। हम उस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए किसी भी प्रकार की अगुवाई करना नहीं चाहते। हमें ऐसा लगता है कि, कश्मीर की सरकार और वहाँ के लोगों के द्वारा ही अगुवाई होनी चाहिए। हम उस बात को बड़ी खुशी के साथ स्वीकार करेंगे।"

('तरूण भारत', नागपुर : दि. 25.7.1993)

इससे यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि संविधान की धारा 370 स्थायी है, नेहरु को यह कभी लगा ही नहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि, कश्मीर

भारत का अभिन्न अंग है। उन्होंने स्पष्ट रूप से सिर्फ इतना ही कहा कि, 370वीं धारा को समाप्त करने के लिए कश्मीर की जनता और सरकार ने अगुवाई करनी चाहिए।

370 वीं धारा का परिणाम

भारत सरकार की ओर से जम्मू कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए कई प्रयास हुए हैं। जिस दिन कश्मीर की समस्या हल होगी, उसी दिन 370 वीं धारा भी समाप्त होगी। सभी भारतीयों को यही लगता है कि यह धारा समाप्त होनी चाहिए। क्योंकि इस धारा की वजह से संपूर्ण संविधान काफी जटिल हो गया है। इस धारा का संविधान की अन्य कई धाराओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। 'इस सवाल को हल करने के लिए पाकिस्तान ने अपनी विशेष अनुकूलता नहीं दर्शायी है। मई, 1955 में पाकिस्तान ने अमेरिका के साथ सुरक्षा समझौता किया है। जिसके कारण संपूर्ण स्थिति बदल चुकी है। इसलिए इस सवाल के सम्बन्ध में पुनः नए सिरे से सोचना पड़ेगा।' इस तरह की भूमिका भारत ने ली है। इसके अलावा कश्मीर की निर्वाचित संविधान सभा ने विलीनीकरण को मंजूरी देने की वजह से एक तरह से जनादेश घोषित किया गया है। यह भी भारत की मान्यता है। किन्तु कश्मीर रियासत का कुछ हिस्सा 'आजाद कश्मीर' अभी भी पाकिस्तान के कब्जे में है।

('मराठी विश्वकोष' : खंड 12, पृ. 192)

भारतीय संविधान की धारा 370 का जम्मू-कश्मीर में प्रत्यक्षतः क्या परिणाम हुआ है, इस सम्बन्ध में 'मराठी विश्वकोष' में जानकारी दी गई है। भारत में जम्मू-कश्मीर का एक विशेष महत्व है। संविधान की धारा 370 के तहत संविधान की कौन-सी धाराएँ इस राज्य पर लागू होगी, इस सम्बन्ध में भारत के राष्ट्रपति वहाँ की सरकार के साथ विचार-विमर्श करके ही तय करेंगे।

इसके अनुसार भारत की संविधान सभा ने कश्मीर के भारत में विलीनीकरण को मंजूरी दे दी। उस समय की कश्मीर सरकार की स्वीकृति से 1954 में राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश जारी किया और उस अध्यादेश के मुताबिक केंद्रीय सरकार को मध्यवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया। कश्मीर के विधि मण्डल द्वारा सिफारिश किए गए और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति को उस राज्य का 'सदर-ए-रियासत' प्रमुख मानना तय किया गया। इस संविधान सभा ने जम्मू कश्मीर का स्वतंत्र संविधान बनाया है। (1957) दरम्यान राज्य में शामिलीकरण के संदर्भ में आम सहमति के लिए मतदान लिया जाए, इसके लिए पाकिस्तान समर्थक लोगों ने आंदोलन खड़ा किया था। कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला का झुकाव

कश्मीर को आजाद करने के पक्ष में था। शेख अब्दुल्ला को 1955 में नजर कैद किया गया और 1971 में उनको उस राज्य से हद पार कर दिया गया। 1975 में शेख अब्दुल्ला ने आम सहमति का आग्रह छोड़ दिया और उन्होंने भारत सरकार के साथ समझौता किया। वे काँग्रेस के समर्थन से पुनः मुख्यमंत्री हो गए। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अन्य राज्यों की तुलना में इस राज्य को काफी अधिकार प्राप्त हैं इस राज्य के स्थायी निवासियों का एक अलग वर्ग बनाया गया है। भारत सरकार ने 352, 360 धारा के तहत घोषित किया गया आपात्काल इस राज्य पर लागू नहीं होता। उसी प्रकार वहाँ के लोगों को धारा 19 के मुताबिक दी गई व्यक्ति स्वतंत्रता कुछ सीमा तक ही दी गई है।

('मराठी विश्वकोष' खंड 12, पृ. 195)

भारत सरकार द्वारा इस तरह की सभी सुविधाएँ देने के बावजूद भी 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 1969 में कानूनन रियासतदारों की तनख्वाह और सभी विशेष हक़ रद्द करके रियासतदारों को स्वतंत्र भारत के आम नागरिक बनाया। बाद में 28 जून से 2 जुलाई, 1972 के दरमियान शिमला में इंदिरा गांधी और भुट्टो में सुलह होकर 'शिमला समझौता' किया गया। फिर भी आज तक कश्मीर का सवाल हल नहीं हुआ, बल्कि वह दिन-ब-दिन उलझता जा रहा है।

क्या धारा 370 को समाप्त किया जा सकता है?

कश्मीर का सवाल हल करने के लिए भारत के भाजपा जैसे कुछ राजनीतिक दल यह माँग कर रहे हैं कि संविधान की धारा 370 को समाप्त किया जाए और मुसलमानों का तुष्टीकरण करना समाप्त किया जाए। इसके लिए वे अपना रोष व्यक्त कर रहे हैं। यही लोग दूसरी तरफ 'हिन्दू राष्ट्र' का खुलकर समर्थन कर रहे हैं। जिस विषम समाज व्यवस्था के समर्थकों ने भारत-विभाजन की स्थिति पैदा की, जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या की, जो लोग कश्मीर के ही नहीं वह तो भारतीय मुस्लिमों को भी अपना नहीं मानते, ऐसे ही लोगों के मुँह से संविधान की धारा 370 समाप्त करने की मांग लगातार हो रही है। इसका मतलब क्या है? क्या उनको धारा 370 समाप्त करके कश्मीर को भारत से पूरी तरह आजाद करना है? यदि यही बात उनके मन में हो तो जिस प्रकार संविधान सभा में एन. गोपालस्वामी अय्यंगर ने इस धारा के निर्माण के समय जो रूकावटें बताई थीं, उन रूकावटों को पहले समाप्त करना होगा। तब कहीं धारा 370 समाप्त की जा सकती है।

भारतीय संविधान की धारा 370 बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस महत्वपूर्ण धारा के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने यदि

अपनी राय व्यक्त की होती तो आज इस सवाल को हल करने के लिए बहुत बड़ा आधार मिल गया होता। जिस दिन 17 अक्तूबर, 1949 को इस धारा पर बहस आयोजित की गई थी, उस दिन डॉ. अम्बेडकर संविधान सभा में अन्य धाराओं का जवाब देते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु इस धारा 370 पर उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया हो ऐसा कोई प्रमाण (सी.ए.डी., वाल्यूम 10, 1949) इस ग्रंथ में दिखाई नहीं देता। इसी के कारण काफी बड़ी कठिनाई पैदा हो गई है। जैसा कि, डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, संविधान के पवित्र मंदिर में भगवान् की स्थापना होने के पहले ही उसमें राक्षस घुस गए हैं। उन राक्षसों की राजनीतिक सौदेबाजी से इस धारा का जन्म तो नहीं हुआ है, इस तरह का संदेह होना स्वाभाविक है। इसीलिए कश्मीर से सम्बन्धित धारा पर, आज के संदर्भ में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही विचार होना चाहिए।

1. "I do not want that our loyalty as Indians should be in slightest way affected by any competitive loyalty whether that loyalty arises out of out religion, out of our culture or out of our language. I want all people to be Indian first, Indian Last and nothing else."
   ('Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings & Speeches', Vol.2, P.195)
2. "Now, Sir, we have inherited a tradition. People always keep on saying to me : 'Oh, you are the maker of the constitution.!' My answer is I was a hack. What was asked to do, I did much against my will."
   (Khairmore, Vol. 11, P. 51)
3. "It may say so, and I say it with a certain amount of pride the constition which has been to this country is a wonderful document. It has been said so not by myself, but many people, many other students of the constitution. It is the simplest and easiest. Many, many publishers have written to me to write a commentary on this constitution, promising a good sum. But I have always told them that to write a commentary on this constitution is to admit that the constitution is a bad one and an un-understandable one. It is not so. Anyone who can follow English can understand the constitution. No commentary is necessary."
   (Ibid, P. 148)

4. "We build a temple for a God to come in and reside, but before the God could be installed, the devil had taken possession of it, what else could we do except destroy the temple? We did not intend that it should be occupied by the Asuras. We intended it to be occupied by the Devas. That is the reason why I said would rather like to burn't it."

(Ibid, P. 149)

5. "The descrimination is due to the special conditions of Kashmir. That particular state is not yet ripe for this kind of integration. It is hope of everybody here that in due course even Jammu and Kashmir will become ripe for the same sort of integration as has taken place in the case of other states (Cheers). At present it is not possible to achieve that integration. There are various reasons why this is not possible now." ('Constituent Assembly Debates, Vol. X 6-10-1949 to 17-10-1949, Page426)

6. "The effect of this article is that the Jammu and Kashmir state which is now a part of India, will continue to be a part of India, will be a unit of the future Federal Republic of India and the Union Legislative will get Jurisdiction to enact laws on matters specified either in Instrument of Accession or by later addition with the concurrence of the Government of the State. And steps have to be taken for the purpose of convening a Constituent Assembly in due course which will go into the matters I have already referred to. When it has come to a decision on the defferent matters, it will make a recommendation to the president who will either abrogate article 306 A or direct that it shall apply with such modification and exception as the constituent Assembly may recommend." ('Constituent Assembly Debates.' Volume x, 6-10-1949 to 17-10-1949, P.427)

अध्याय 9

कश्मीर के सवाल पर बौद्धों की भूमिका

> *कश्मीर कभी स्वतंत्र राज्य नहीं था। वह एक संयुक्त राज्य था। और वह हिन्दू, बौद्ध तथा मुस्लिम लोगों से मिलकर बना हुआ राज्य था। जम्मू और लद्दाख गैर-मुस्लिम क्षेत्र थे। किन्तु कश्मीर पर्वतीय क्षेत्र मुस्लिमों का था। यदि हम पूरे कश्मीर की सुरक्षा नहीं कर सकते तो कम से कम अपने सम्बन्धियों की रक्षा तो कर सकते हैं!*
>
> **–डॉ. बी. आर. अम्बेडकर**

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर चरित्र' खंड 10, चां. भ. खैरमोडे, पृ. 207 (मराठी))

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने समय-समय पर कश्मीर के सवाल पर अपनी भूमिका बहुत ही सक्षम ढंग से रखी है। उसी की वजह से अम्बेडकरवादी-आन्दोलन के इतिहास में इस सवाल को काफी बड़ा महत्व प्राप्त हुआ है। अम्बेडकरवादी-आन्दोलन केवल दलितों के सवालों तक ही सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह आन्दोलन एक व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन रहा है। इसीलिए इस आन्दोलन ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में दलितों की मुक्ति के सम्बन्ध में व्यापक रूप से सोचा है। इस आन्दोलन ने, जो इसकी सांस्कृतिक प्रेरणा है, उस बौद्ध धर्म को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कश्मीर केवल हिन्दू और मुस्लिमों तक ही सीमित न होकर, इसमें बौद्धों के अस्तित्व का सवाल भी जुड़ा हुआ है, उसकी ओर अब तक कई लोगों का ध्यान नहीं गया है। उसी प्रकार कश्मीर की अनुसूचित जाति और जनजातियों का सवाल भी उतना ही गंभीर है। किन्तु हिंदू और मुस्लिमों के सवाल के अलावा इस समस्या पर कोई खास विचार-विमर्श नहीं हुआ है। इसीलिए अम्बेडकरवादी-आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में कश्मीर के सवाल पर विचार करना बहुत ही जरूरी हो गया है।

अम्बेडकरवादी अखबारों में कश्मीर के सवाल पर चर्चा

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने कश्मीर के सवाल पर अपने राजनीतिक दल के माध्यम से, चुनाव प्रचार के माध्यम से और संसद के मंच पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसके बाद इस परम्परा को उनके अनुयायियों ने उसी क्षमता के साथ आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। अम्बेडकरवादी पत्र-पत्रिकाओं में इस सम्बन्ध में भी लिखा गया है। 'प्रबुद्ध भारत' के अंक (20 जनवरी, 1962) के सम्पादकीय में 'कश्मीर के सवाल' इस विषय पर बड़े विस्तार से लिखा गया है। उस सम्पादकीय में स्पष्ट रूप से यह लिखा गया है कि, 'हमारी रिपब्लिकंन पार्टी ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में इसकी भूमिका को साफ शब्दों में रखा है।' उस सम्पादकीय की कुछ हिन्दुत्ववादी लोगों ने जमकर आलोचना की थी। ('प्रबुद्ध भारत'-20 जन. 1962) 'प्रबुद्ध भारत' 17 जून 1961, 24 जून 1961 आदि अंकों में वि. त्र्यं. शेट्ये (बी.ए.एल.एल.बी.) के 'पाकिस्तान और चीन से दोस्ती एक राजनीतिक षड़यंत्र' इस नाम से दो बहुत ही महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के एक अनुयायी और नेता 'भीमशक्ति' के सम्पादक एच. डी. आवड़े (बी. एस. सी., एल.एल.बी.) ने कश्मीर के सवाल पर बहुत ही महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। दि. 26-9-65 के अंक में 'फिलहाल भारत-पाकिस्तान युद्धविराम, कश्मीर का क्या?' पाकिस्तान ने दुम दबाकर अन्त में फैसला स्वीकार कर लिया? इस नाम से एक विशेष लेख प्रकाशित हुआ है। 'भीमशक्ति' के 12-9-1965 के अंक में 'भारतवासियों! जागते रहो, आनेवाला कल बड़ा खतरनाक है' और अपने सम्पादकीय में 'लाहौर' इन दो लेखों के द्वारा उन्होंने कश्मीर के सवाल पर बहुत ही खोजपूर्ण और विद्वतापूर्ण ढंग से लिखा है। इन दो लेखों में उन्होंने स्पष्ट रूप से इस तरह के निर्देश दिए थे कि भारत ने राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् को इस सवाल पर गम्भीर रूप से सोचने के लिए मजबूर करना चाहिए। उसी प्रकार 'भीमशक्ति' के 29-8-1965 और 5-9-1965 के अंक में दो सम्पादकीय लिखे गए हैं। एक, 'भारतीय राजनीतिक स्थिति में कश्मीर', और दो, 'कश्मीर और परमाणु हथियार', 'बौद्ध भारत' के अंक में (20 मार्च, 1958) माननीय बी. पी. मौर्य का भाषण प्रकाशित हुआ है। इस व्याख्यान में वे कहते हैं, 'डॉ. अम्बेडकर ने कश्मीर के बारे में हमें बड़ा अनमोल मार्गदर्शन किया था। और आज नहीं तो कल उस सलाह को आपको अपनाना ही पड़ेगा।' इस प्रकार के अखबारी सन्दर्भ उपलब्ध हैं। जिनमें अम्बेडकरवादी सोच के आधार पर कश्मीर के सवाल पर विचार व्यक्त हुए हैं। इन सभी सन्दर्भों को यहाँ देना असम्भव है। फिर भी एक बात यह साबित होती है कि, अम्बेडकरवादी-आन्दोलन में कश्मीर के सवाल को एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

लद्दाख में बौद्धों की स्थिति

भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय जब लाहौर पाकिस्तान में चला गया, तब भारतीय बौद्धों को उसका सबसे ज्यादा दुःख हुआ। लाहौर के इर्दगिर्द भारतीय बौद्ध संस्कृति का इतिहास छिपा हुआ है। लाहौर के पास तक्षशिला नाम का जो प्राचीन नगर है वहाँ प्रसिद्ध बौद्ध चिकित्सक जीवक ने शिक्षा ग्रहण की थी। उसी प्रकार मिलिंद और नागसेन के बीच जो ऐतिहासिक संवाद हुआ था, वह स्थान भी इसी के आसपास है। इसी लाहौर में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने 'जातपात तोड़क मण्डल' के अध्यक्ष माननीय सन्तराम, बी.ए. द्वारा आयोजित 'जातपात तोड़क वार्षिक सम्मेलन' के लिए 'जातिभेद उच्छेद' (एनिहिलेशन ऑफ कास्टस्) विषय पर एक विस्तृत अभिभाषण लिखा था, जो बाद में पुस्तकाकार में स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने प्रकाशित किया था। इस तरह लाहौर शहर बौद्धों के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण था। वह पाकिस्तान में जाने से भारतीय बौद्धों को दुःख होना स्वाभाविक था। यही बात लद्दाख के बारे में भी थी।

विभाजन के बाद कश्मीर के सवाल में लद्दाख के बहुसंख्य बौद्धों का भूक्षेत्र उलझन में पड़ गया था। ऐसी स्थिति में उसके बारे में अम्बेडकरवादियों को दुःख होना स्वाभाविक ही था। लद्दाख में बौद्धों की स्थिति किस प्रकार की है, इसका यथार्थ वर्णन पार्थ.एस. बॅनर्जी ने अपने लेख 'लद्दाख क्राई फॉर होमलैण्ड' इस लेख में निम्न प्रकार से किया है–

'सन् 1947 में जब सम्पूर्ण भारत अपनी स्वतंत्रता का आनंदोत्सव मना रहा था, उसी समय कश्मीर की बौद्ध जनता स्वतंत्र भारत के सपूत होने की बजाय परतंत्रता की आग में लद्दाख में जल रही थी। उनको भारत से अलग किया गया और कश्मीर सरकार ने उसके साथ घृणित बर्ताव करना शुरू किया। लेह जिले की कुल संख्या के 86 प्रतिशत लोग बौद्ध हैं, किन्तु केवल धर्म के नाम पर वहीं के सत्ताधारी सुन्नी मुस्लिम बौद्धों के साथ दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह बर्ताव करते हैं, और सरकार में उनका प्रतिनिधित्व नामंजूर किया जाता है। लद्दाख प्रदेश लेह और कारगिल आदि दो जिलों से मिलकर बना है; फिर भी फारूख अब्दुल्ला के 30 लोगों के मंत्रिमंडल में एक भी बौद्ध प्रतिनिधि को सम्मिलित नहीं किया जाता।' ('द हितवाद', नागपुर, 1 अक्तू. 1989)

लद्दाख के शिया मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग बौद्धों के प्रति हमदर्दी रखते हैं, किन्तु सुन्नी मुस्लिम वहाँ के बौद्धों को सताने में अपना धर्म मानते हैं। वहाँ के मुस्लिम शासक बौद्धों पर बेवजह बेहद जुल्म ज्यादतियाँ करते हैं। वे वहाँ के बौद्धों को मुस्लिम् बनाने की हर तरह की कोशिश करते हैं। वहाँ के बौद्धों को कश्मीर

के पुलिस के द्वारा सताया जाता है। वहाँ के मुस्लिम पुलिस की वर्दी में बौद्धों के घरों में घुसते हैं, उनको डराते धमकाते हैं और उनके घर की चीजों को नष्ट करते हैं। इस प्रकार के अमानुषी अन्याय से लद्दाख की बौद्ध जनता काफी उब चुकी है। और वहाँ की बौद्ध जनता अपनी स्वतंत्र मातृभूमि की मांग कर रही है और भारत में सम्मिलित होने का प्रयास कर रही है। किन्तु मुस्लिम नेता उनको डरा-धमका रहे हैं। वे कह रहे हैं कि, "यदि लद्दाख कश्मीर से अलग हो गया तो कश्मीर भारत से अलग हो जाएगा।"

उनकी इस धमकी की वजह से ही भारत के लोग भी लद्दाखी बौद्धों की समस्या की ओर विशेष ध्यान नहीं दे रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर के सवाल के साथ लद्दाखी बौद्धों का सवाल भी कितना उलझा हुआ है।

कश्मीर में दलितों की स्थिति

जिस तरह कश्मीर के बौद्धों का प्रश्न काफी गम्भीर है, उतना ही कश्मीर के दलितों का प्रश्न भी। कश्मीर में दलितों का क्या स्थान है, इस सवाल पर भी सोचने की जरूरत है। जम्मू-कश्मीर की कुल जनसंख्या (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 55 (1) के मुताबिक) 44,10,000 है। और वहाँ के अनुसूचित (दलित) जातियों की संख्या (1971 की जनगणना के मुताबिक) 3,81,277 है। यहाँ अनुसूचित जमातियों की जनसंख्या का उल्लेख नहीं है; क्योंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 (2) के संशोधन के मुताबिक 'खण्ड 3 में 'राज्य' के सूची में जम्मू और कश्मीर का नाम नहीं है। यही उसका अर्थ लगाया जा सकता है।' इस तरह का स्पष्टीकरण किया गया है। जिसकी वजह से जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जाति के बारे में सोचने के लिए कोई रास्ता ही नहीं है। किन्तु एक बात निश्चित है कि जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या के 9 से 10 प्रतिशत तक है। कश्मीर की समस्या के बारे में सोचते समय दलितों के उत्थान के लिए भारतीय संविधान में जो आरक्षण और सुविधाएँ दी गई हैं, उस पर जम्मू-कश्मीर में अमल होता है या नहीं, इसकी भी खोज करना जरूरी है। जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति के लोगों के लिए किसी भी प्रकार का राजनीतिक आरक्षण नहीं दिया है। भारतीय संविधान की धारा 332 और 334 के मुताबिक लोकसभा में व राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए आरक्षित स्थान (राजनीतिक) रखने के प्रावधान के लिए जम्मू और कश्मीर अपवाद है। इसलिए वहाँ की शासन-व्यवस्था में दलितों को स्थान मिलना असम्भव है। जिस कश्मीर में परम्परागत बौद्धों को कोई अधिकार नहीं, उसी कश्मीर में अनुसूचित जाति के लोगों की क्या

स्थिति होगी, इसकी कल्पना ही कर सकते हैं! सरकार में दलितों को किसी भी प्रकार का राजनीतिक आरक्षण नहीं होने की वजह से उनके सवालों पर आवाज उठाने की कोई व्यवस्था नहीं है।

अनुसूचित जातियों की नौकरी से सम्बन्धित आरक्षण के लिए 25 अगस्त, 1950 को अखिल भारतीय रिपब्लिकन पार्टी के प्रेसिडियम के अध्यक्ष बेरि. राजाभाऊ खोब्रागडे ने अखिल भारतीय सर्व्हिसेस (अमेन्डमेण्ड) बिल जम्मू और कश्मीर में भी लागू करने के सम्बन्ध में राज्यसभा में एक बहुत ही महत्वपूर्ण माँग की थी। आई.ए.एस. और आई.पी.एस. नौकर भरती के लिए यह बिल जम्मू और कश्मीर में भी लागू किया गया, इसके लिए बेरि. खोब्रागडे ने खुशी जाहिर की थी। इस बिल का श्रेय कश्मीरी जनता को, कश्मीर की सरकार को और खासतौर पर कश्मीर के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद को ही देना चाहिए। भारत सरकार को इसका श्रेय देने की कोई वजह नहीं है, इस तरह का खुलासा भी उन्होंने किया था। इसी के साथ ही जम्मू-कश्मीर के दलितों को नौकरियों में आरक्षण मिलना चाहिए, इस माँग के समर्थन के लिए बेरि. खोब्रागडे ने जो भूमिका रखी, वह निम्न प्रकार है–

> "दलित वर्गीय लोगों को नौकरी के अलावा अन्य किसी भी क्षेत्र में जाना सम्भव नहीं है। व्यापार, वाणिज्य, उद्योग-धंधों में हमारे दलितों के लिए सभी दरवाजे बंद हैं। शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनके लिए एक क्षेत्र है और वह है नौकरियाँ। यदि उन्हें नौकरी नहीं मिली तो निराशा फैलेगी और उससे दलितों का उत्थान रूक जाएगा। इसलिए जम्मू-कश्मीर के संविधान में भी दलितों के लिए आरक्षित नौकरियों की व्यवस्था होनी चाहिए।"

('प्रबुद्ध भारत', 6-9-1958)

जब राज्यसभा में डॉ. गौर ने इस तरह का सवाल पूछा था कि, "क्या कश्मीर के संविधान में दलितों के आरक्षण की व्यवस्था है?" इस सवाल का जवाब देते हुए बेरि. खोब्रागडे ने कहा था कि,

> "उस तरह की व्यवस्था शायद नहीं है, किन्तु कश्मीर की दलित जातियाँ पिछड़ी हुई होने के कारण वहाँ भी सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, इस तरह का मेरा आग्रह है।"

(उक्त)

बेरि. खोब्रागडे ने अपने इस व्याख्यान में इस तरह की भी माँग की थी कि, "दलित जातियों को अच्छे कानून की जरूरत नहीं है, बल्कि अच्छे शासन-व्यवस्था

की जरूरत है। वही सबसे महत्वपूर्ण बात है। दलित जातियों की भलाई चाहने वाले राज्यकर्त्ता होने चाहिए। उच्चवर्गीय हिन्दू अफ़सरों को अछूतों के प्रति कोई हमदर्दी नहीं है। इसलिए हमारे सरकारी अधिकारी होने चाहिए। जम्मू-कश्मीर में उस तरह के आरक्षण प्रमाण की व्यवस्था की जानी चाहिए।'' (उक्त)

कश्मीर में दलितों के साथ अन्याय

आम आदमी को इस बात का पता लगने का कोई रास्ता नहीं है कि जम्मू-कश्मीर में दलितों पर अन्याय, जुल्म ज्यादतियाँ होती हैं या नहीं। जम्मू-कश्मीर में दलितों पर किस प्रकार से अन्याय होते हैं इसकी विस्तृत चर्चा आई.ए.एस. अधिकारी शंकरराव सुरडकर ने अपनी मराठी किताब 'काश्मीर ते कन्याकुमारी पर्यंतच्या करुण किंकाळया' (कश्मीर से कन्याकुमारी तक की दर्दभरी कहानियाँ) में (पृष्ठ क्र. 19-20) में की है।

जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जाति के लोगों के लिए स्वतंत्र कानून, सहायता योजना तैयार नहीं की गई। इसका कारण राज्य में नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम से सम्बन्धित विवाद कम होने की बात नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के वर्ष 1986 की वार्षिक रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर लिखा गया है। उस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि राज्य में अछूतपन बहुत ही कम होने के कारण अस्पृश्यता से सम्बन्धित विवादों की संख्या बहुत कम है। दलितों पर होनेवाले अत्याचारों के सम्बन्ध में अप्रैल, 1990 में भारत सरकार की ओर से 'एट्रोसिटीज शेड्युल्ड कास्ट एण्ड ट्राईब्स्; कॉजेस एण्ड रिमेडिज' इससे सम्बन्धित रिपोर्ट 'नेशनल कमीशन फॉर शेड्युल्ड कास्ट एण्ड शेड्युल्ड ट्राईब्स' में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट में जम्मू-कश्मीर में दलितों पर हुए अत्याचारों की संख्या दी गई है। इस रिपोर्ट में यह दर्ज किया है कि 1981-1986 के दरम्यान 346 दलितों पर अत्याचार हुए हैं। (एपेंडिक्सII/पृ. 56)1981 में वहाँ दलितों पर अत्याचार की 124 घटनाएँ घटी हैं। उसके बाद दलितों के अत्याचार का प्रतिशत कुछ कम दिखाई देता हो फिर भी 1986 में दलितों पर जुल्म-ज्यादतियों की 89 घटनाएँ घटी हैं। इसका सीधा मतलब यह है कि जम्मू-कश्मीर में अस्पृश्यता की स्थिति निश्चित तौर पर मौजूद है। किन्तु वहाँ अनुसूचित जनजातियों की स्थिति के बारे में पता लगाने के लिए कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए किसी भी प्रकार की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। केवल सरकारी आंकड़ों से जम्मू-कश्मीर के दलितों की स्थिति का सही पता नहीं चलेगा। इसलिए कुछ सामाजिक संगठनों की अगुवाई में इस बात

का पता लगाने की जरूरत है कि अनुसूचित जातियों का सरकारी नौकरियों में प्रतिशत, राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिशत और उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति के बारे में सही जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इसके बगैर उनके उत्थान के बारे में सोचा ही नहीं जा सकता।

भारतीय संविधान में कुछ व्यवस्थाएँ

भारतीय संविधान में कश्मीर के सम्बन्ध में कई अनुच्छेद इस प्रकार के हैं कि उन अनुच्छेदों की टिप्पणी 'यह अनुच्छेद जम्मू और कश्मीर के लिए लागू नहीं होगा' इस तरह की लिखी हुई है। भारतीय संविधान के कई पृष्ठ इस अपवाद से भरे पड़े हैं। भारतीय संविधान का भाग 16 'विवक्षित वर्गों के लिए विशेष व्यवस्था' इस प्रकार का है। उसमें अनुसूचित जाति-जनजाति के लिए कुछ विवक्षित अधिकारों की व्यवस्था है। इन अपवादों में भी जम्मू-कश्मीर अपवाद है। इसमें महत्वंपूर्ण व्यवस्था इस प्रकार है।

1. अनुच्छेद-332 : राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए स्थान आरक्षित रखना।

2. अनुच्छेद 334 : आरक्षित स्थान और विशेष प्रतिनिधित्व 30 साल बाद समाप्त करना।

3. अनुच्छेद 335 : सेवा और पद आदि पर अनुसूचित जाति और जनजाति का हक।

4. अनुच्छेद 338 : अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आदि के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

5. अनुच्छेद 339 : अनुसूचित क्षेत्र का प्रशासन और अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित कल्याणकारी कार्य आदि पर संघराज्य का नियंत्रण।

(भारतीय संविधान, पृ. 105)

भारतीय संविधान के उक्त अनुच्छेदों का अध्ययन करने के बाद इस बात का पता चलता है कि अनुसूचित जातियों के लिए अन्य प्रांतों में राजनीतिक, नौकरी, कल्याणकारी कार्य आदि से सम्बन्धित जो विशेष सुविधाएँ हैं, वह जम्मू-कश्मीर के लिए लागू नहीं है। अनुसूचित जनजातियों को तो सुविधाओं में तो रोक ही लगी हुई है। इस तरह की स्थिति में अनुसूचित जाति के लोगों ने अपने विकास के लिए कश्मीर में विशेष सुविधाओं की माँग करनी चाहिए। अनुसूचित जनजातियों के लोगों को भी अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अपने अधिकार हासिल करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

कश्मीर में बौद्धों की स्थिति

जम्मू-कश्मीर में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 1971 की जनगणना के मुताबिक 3, 81, 277 लिखी गई है। यह जनसंख्या 1991 तक निश्चित तौर पर 4 से 5 लाख तक हो गई होगी। अर्थात् यह प्रतिशत कुल जनसंख्या के 8-9 प्रतिशत तक पहुँचेगा। इस तरह अस्पृश्य समाज की केवल जम्मू-कश्मीर में अछूतपन की कोई भयंकर स्थिति नहीं है, इस तर्क के आधार पर उन्हें संवैधानिक विशेष अधिकार नहीं दिए गए हैं। सरकारी रिपोर्ट में वहाँ के अछूतों की स्थिति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उससे भी भयंकर स्थिति वहाँ अछूतों की है, इस बात को कोई नकार नहीं सकता। वहाँ केवल हिन्दू-मुस्लिम और बौद्ध आदि के सम्बन्ध में खासतौर पर सोचा जा रहा है। जिसकी वजह से शायद कश्मीर के अनुसूचित जातियों के उत्थान के बारे में विशेषतौर पर सोचा नहीं जा रहा हो। इसीलिए जम्मू-कश्मीर के अनुसूचित जाति के लोगों के बारे में भी, उनके उत्थान के बारे में भी सोचा जाना चाहिए। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बौद्ध धर्म को अपनाया और जो सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति की, उसी क्रांति की रोशनी के बगैर यहाँ के दलितों के घरों तक उनके उत्थान का रास्ता आगे बढ़ नहीं सकता। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर का बताया हुआ बौद्ध धर्म का रास्ता वहाँ के दलितों तक पहुँचाने की और धर्मान्तरण के रास्ते से उनमें नई धम्म-आभा निर्माण करने की जरूरत है। भारत सरकार ने नव-बौद्धों के लिए विशेष सुविधाएँ दी हैं। उन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए वहाँ के दलितों ने यदि बौद्ध धर्म को अपनाया तो उनका भारतीय बौद्धों के साथ खून का रिश्ता तो बनेगा ही, साथ ही साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित होंगे, और इसी रास्ते से जम्मू-कश्मीर में एक विराट बौद्ध शक्ति पैदा की जा सकती है। जो लद्दाख के बौद्ध आज अकेले अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं इससे उनको नई शक्ति जो मिलेगी। इस तरह जम्मू-कश्मीर का सवाल केवल हिन्दू-मुस्लिमों के संघर्ष का ही नहीं है, बल्कि दलित और लद्दाखी बौद्धों के अस्तित्व और सुरक्षा का भी है। इसलिए इस समस्या की ओर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा गया तो इसका मतलब यह होगा कि हम लोग जम्मू-कश्मीर की सम्पूर्ण जनता के बारे में सोच रहे हैं।

1. Kashmir was not a unitary state. It was a composite state, consisting of Hindus, Buddhist and Muslims. Jammu and Ladak were non Muslim areas whereas the Kashmir valley was Muslims. If we cannot save the whole of Kashmir at least let us save our Kith and Kin.

(Khairmode, Vol. 10, P.207)

2. In 1947, says a booklet published by the movement leadership, 'When (the) whole of India rejoiced over its independence... (Ladakhis jumped) out of the frying pan into the fire...rather than becoming free sons of free India, they were left at the mercy and step-motherly treatment of the Kashmir government.' Over 86% of Leh district's population are Lama Buddhists (Like Tibetans) and it is because of their religion, they allege, that the government of the majority Sunni Muslims in Kashmir has consistently discriminated against them. We are second class citizens' they lament, with virtually no representation in the government. The Ladakh region comprising two district's Lej and Kargil, the later largely Muslim-elects only two MLAs besides two MLAs for the Upper House. Only one of the four legislators is a Buddhist, while Dr. Forooq Abdullah's 30. strong ministry cannot boast a single Buddhist.
(The Hitavada, Oct. 1, 1989)

अध्याय 10

कश्मीर का सवाल : परिणाम और समाधान

> *खुले मस्तिष्क का सर्वत्र स्वागत होता है। खुला मस्तिष्क कहीं टकराता या भय नहीं खाता है। अगर ऐसा हुआ तो उस समय यह भी समझना जरूरी है कि खुला मस्तिष्क एक रिक्त मस्तिष्क होगा। अगर खुला मस्तिष्क खुशहाल स्थिति में है तो वह मनुष्य के लिए अत्यंत भयानक स्थिति साबित होगी।* —डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

('डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पिचेस', वाल्यूम 8, पृ. 18)

कश्मीर का सवाल भारत के राजनीतिक तत्वों का और अस्मिता का सवाल है। और वह हल न हो, इसके लिए कुछ सम्बन्धित राष्ट्र पिछले पचास वर्षों से लगातार दखलअंदाजी करते जा रहे हैं। इस सवाल पर भारत और पाकिस्तान में तीन बार युद्ध हुआ है और तीनों बार ऐतिहासिक समझौते हुए हैं। 1949 के युद्ध के बाद 'कराची समझौता' हुआ है। 1966 के युद्ध के बाद 'ताशकंद समझौता' हुआ है। और 1972 के युद्ध के बाद 'शिमला समझौता' हुआ है। यह 'शिमला समझौता' इस सवाल की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण समझौता समझा जाता है। भारत के पूर्व रक्षामंत्री माननीय यशवंतराव चव्हाण 'शिमला समझौते' के संदर्भ में कहते हैं कि,

> "जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है।...' भारत और पाकिस्तान के बीच के सभी मतभेदपूर्ण सवाल हल करने का सही और व्यावहारिक रास्ता 'शिमला समझौते' में दर्ज किया गया है। 'शिमला समझौते' की वजह से कई क्षेत्रों के सवाल हल करने की प्रक्रिया शुरू हुई है। यही प्रक्रिया आगे भी जारी रहे, यही भारत की इच्छा है। क्योंकि उसी की वजह से ही भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिरता और दीर्घजीवी शांति बरकरार रह सकती है।"

('भूमिका' : यशवंतराव चव्हाण, पृ. 220, 221)

'शिमला समझौते' के मुताबिक कश्मीर का सवाल हल होना सम्भव है, इस बात की कल्पना पाकिस्तान को भी है। इसलिए पाकिस्तान इस समझौते को नजरअन्दाज कर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस सवाल का लाभ उठाने का प्रयास कर रहा है। 'भारतीय सुरक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्था' के एक सर्वेक्षण अध्ययन से इस तरह का निष्कर्ष निकाला गया है कि, 'यहाँ कश्मीर का सवाल पाकिस्तान की दृष्टि से एक बहाना है। मूलतः इसके पीछे उसकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षा है। पाकिस्तान की नजर भारत के कश्मीर और अफगानिस्तान पर है।' ('माया', 30 सितं. 1992) यदि इस बात को सच माना भी जाए 'तब भी कश्मीर का सवाल यहाँ के राज्यकर्त्ताओं से सम्बन्धित और उनके अस्तित्व का भी है। इस सवाल के बहाने पाकिस्तान का मुस्लिम जातिवाद और फौजी एकाधिकार तन्त्र कायम रखने की यहाँ के राज्यकर्ताओं की राजनीतिक जरूरत है। एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों को कश्मीर का सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण लगता है। पाकिस्तान को अपना पिछलग्गू बनाकर वहाँ अपनी फौजी छावनियाँ रखने के लिए भारत के खिलाफ षड्यंत्र करने के लिए इस सवाल को बरकरार रहने देना, उनके लिए जरूरी-सा हो गया है। इसीलिए साम्राज्यवादियों ने इस सवाल को जिंदा रखकर राष्ट्रसंघ में वैसे ही पड़े रहने दिया है।' भारत की सनातनी जातिवादी शक्तियों को राजनीतिक दलों को इस सवाल के बहाने सत्ताधारियों पर दोषारोपण करने के लिए, मुस्लिमों के साथ दुश्मनी का माहौल पैदा करने के लिए और अपना राजनीतिक अस्तित्व यथावत् बरकरार रखने के लिए ऐसा लगता है कि यह सवाल हल न हो और जस का तस रहे। विदेशी साम्राज्यवादियों को कश्मीर के सवाल के बहाने इसी प्रकार के जातिवादी गुटों में से कई 'रिक्रूट' मिल सकते हैं। इस बात को नजरअन्दाज करने से काम नहीं चलेगा। भारत के सत्ताधारी वर्ग को भी इस प्रश्न के बहाने मुसलमानों के गट्ठा वोट अपनी ओर आकर्षित करने का एक मौका प्राप्त हुआ है। इस तरह कश्मीर का सवाल कई राजनीतिक दांवपेचों का शिकार बना है।

समाधानों की रूपरेखा

आज की स्थिति में कश्मीर का सवाल राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर का होने के बावजूद भी वह अंतर्राष्ट्रीय महत्व का बन गया है। इसीलिए इस सवाल को हल करने के लिए आज की स्थिति में जो समाधान सुझाए गए हैं, उस सम्बन्ध में सोचना बहुत ही जरूरी है।

एक : जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. फारूख अब्दुल्ला कश्मीर के सवाल पर अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–

"इसलिए विपक्ष, विशेषकर राष्ट्रीय मोर्चा-वामपंथी मोर्चा (रामो-वामो) ने कश्मीर के संदर्भ में एक योजना तैयार की है! इस योजना के तहत उन्होंने माँग की है कि कश्मीर में राजनीतिक प्रक्रिया शुरु करने के पूर्व 1953 की संवैधानिक स्थिति पर लौटने के लिए तैयार रहना चाहिए तथा अनुच्छेद 370 के जरिए दी गई स्वायत्तता को पुनः कायम करना चाहिए। इन दलों का मानना है कि कश्मीरियों को जो स्वायत्तता प्रदान की गई थी, उसमें हस्तक्षेप ही समस्या का इस मूल कारण है! और इस सबकी पुनः स्थापना एक राजनीतिक राज्यपाल ही कर सकता है! अगर इसके पहले कश्मीर में चुनाव कराए गए तो एक प्रतिशत लोग भी मतदान में भाग नहीं लेंगे!"

('माया', उक्त)

दो : पाकिस्तान के वजीरे-आजम मोहम्मद नवाज शरीफ कश्मीर के सवाल को हल करने के सम्बन्ध में कहते हैं कि,

"देखिए, जहाँ तक कश्मीर की बात है, उस पर अकवामे मुत्तहेदा (राष्ट्रसंघ) का एक मसौदा है! उसे हिंदुस्तान ने न सिर्फ मंजूर किया, बल्कि तामील का वायदा भी किया है! पूरी दुनिया को इसकी जानकारी है और सबको मंजूर है! अगर तामील होती है, तो मसला हल हो जाएगा!"

('उक्त', पृ. 20)

तीन : अमेरिका ने मध्य-पूर्व एशिया में शांति स्थापित करने के लिए मिस्र और इस्रायल के बीच जिस प्रकार 'कैंप डेविड समझौता' किया था, उसी आधार पर पाकिस्तान और भारत के प्रधानमंत्री से विचार-विमर्श कर कश्मीर के सन्दर्भ में पांच शर्तोंवाला प्रस्ताव तैयार किया था, उसमें निम्न प्रकार की शर्तें लिखी गई हैं—

1. भारत, कश्मीर के विभाजन को स्थायी मान लेगा और मौजूदा नियंत्रण रेखा अंतर्राष्ट्रीय सीमा मान ली जाएगी।

2. कश्मीर की दक्षिण सीमा के निकट की भूमि पाकिस्तान भारत को दे देगा तथा भारत उत्तर कश्मीर की भूमि पाकिस्तान को, ताकि चीन और पाकिस्तान में आवागमन आसान हो सके।

3. चीन के नियंत्रण वाले कश्मीर के संदर्भ में भविष्य में चीन और पाकिस्तान के बीच किसी भी वार्त्ता या समझौते में भारत दखल नहीं देगा।

4. कश्मीर में भारत-पाक सीमा आवागमन और व्यापार के लिए खुली रहेगी।

5. कश्मीर को रक्षा, विदेश, संचार और मुद्रा विषयों को छोड़कर सभी मामलों में स्वायत्तता दी जाएगी! अपवाद वाले विषयों पर 'नई दिल्ली' का नियंत्रण रहेगा। (उक्त, 60)

चार : इंग्लैंड के प्रधानमंत्री जॉन मेजर जब जनवरी, 1993 में भारत आए थे, उस समय उन्होंने कश्मीर के सवाल की त्रि-सूत्री योजना प्रस्तुत की थी, वह इस प्रकार है।

1. 'शिमला समझौते' के मुताबिक नेकी से राजनीतिक संवाद।

2. राजनीतिक प्रक्रिया शुरु करने के साथ ही कश्मीर में मानवीय हकों की रक्षा करना।

3. वहाँ के आतंकवादियों को मिलनेवाला विदेशी समर्थन रोक देना.

('दे. लोकमत', नागपुर, दि. 26 जानवरी 93)

पांच : कश्मीर बचाव मंच की ओर से आयोजित जनजागरण-अभियान के समापन समारंभ के अवसर पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के पूर्व राष्ट्रीय महामंत्री श्री हरेंद्रकुमार ने कश्मीर के सवाल पर हल खोजने के लिए पांच सूत्री कार्यक्रम सुझाया था, जो इस प्रकार है-

1. कश्मीर में भारत विरोधी कार्रवाई का जमकर मुकाबला करना।
2. संविधान के अनुच्छेद 370 को रद्द कर देना।
3. सीमा के करीब के प्रदेश में सेवानिवृत्त सैनिकों को प्रयासपूर्वक रखना।
4. देश के अन्य भागों में जो देशद्रोही हरकतें चल रही हैं, उनको खत्म करना।
5. इस देश के मुस्लिमों को उचित समझा देना।

छह : कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए विदेश मंत्री दिनेशसिंह ने किसी भी तीसरे पक्ष की मध्यस्थता को साफतौर पर नकार दिया था और दक्षिण एशिया में प्रभावी आर्थिक सत्ता-निर्माण करने के दृष्टि से अपनी राय व्यक्त की थी और उन्होंने यह भी कहा था कि इस भूप्रदेश में धार्मिक पागलपन, उसी प्रकार वांशिक हिंसाचार की भर्त्सना करनी चाहिए, इस तरह का मत उन्होंने यू. न्यू. को दिए साक्षात्कार में व्यक्त किया था। उन्होंने आगे यह भी कहा था कि, कश्मीर के सवाल पर कोई जवाब नहीं है, बल्कि इस सवाल का हल दोनों देशों के बीच समझौते पर ही निर्भर करता है। इसके लिए मध्यस्थता किसी पक्ष का भी समाधान करनेवाली साबित नहीं होगी।

('लोकमत', नागपुर, दि. 24 जन. 1993)

सात : एक जाने-माने पत्रकार अरुण शौरी ने कश्मीर का सवाल हल करने के लिए चार बातों को समाधान के तौर पर प्रस्तुत किया था। वे लिखते हैं कि,

1. कश्मीर में सुरक्षा बलों की संख्या पंजाब की तरह दो गुना बढ़ानी चाहिए। और उनको कार्रवाई के लिए खुली छूट देनी चाहिए।

2. आतंकवादी और सामान्यजन में फर्क करना चाहिए। उसी प्रकार सुरक्षा दल की ओर से मानवी हक़ों को तुड़वाया न जा सके, इस दृष्टि से उन पर नियंत्रण रखना चाहिए।

3. मान लीजिए, इस तरह की घटनाएँ घटें, तब भी उनके आधार पर पाकिस्तान की ओर से जो बढ़ा-चढ़ाकर गलत प्रचार हो रहा है, उसका मुकाबला करना चाहिए। खासतौर पर पश्चिमी राष्ट्र स्वयं-निर्णय के मुद्दे को महत्व नहीं देंगे किन्तु मानवीय हक़ का मुद्दा निश्चित तौर पर उछाला जाएगा, इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए।

4. नीति-निर्धारण और समन्वय आदि के सभी सूत्र दिल्ली को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। (चौथा मुद्दा सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।)

('तरुण भारत', नागपुर : 14 मार्च 1993)

समाधानों का परामर्श

कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए उक्त सात भूमिकाएँ उद्धृत की गई है। इसमें एक बात विशेषतौर पर दिखाई देगी कि 'शिमला समझौते' के आधार पर इस सवाल का हल हो सकता है, इस तरह का एक विचार-प्रवाह है। किन्तु 1972 से लेकर आज तक 'शिमला समझौते' के माध्यम से कुछ भी अनुकूल परिणाम दिखाई नहीं दिया हैं, यह साफतौर पर दिखाई देता है। कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री ने अपनी भूमिका कश्मीर की स्वतंत्रता बरकरार रखने के लिए रखी है। उन्होंने यह भी कहा है कि इस स्वतंत्रता में भारत सरकार का समय-समय पर जो हस्तक्षेप हुआ है, वह कश्मीर के सवाल का बुनियादी कारण है, और इन सबका प्रतिष्ठापन एक राज्यपाल ही कर सकता है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने इस सवाल को हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का रास्ता सुझाया है, तो अमेरिका ने इस सवाल को 'कैम्प डेविड समझौते' की तरह हल करने का रास्ता सुझाया है। इस सन्दर्भ में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने अपनी 'त्रि-सूत्री योजना' प्रस्तुत की है। उसी प्रकार अरुण शौरी ने इस सवाल के सन्दर्भ में यह सुझाव दिया है कि दिल्ली को सभी सूत्र अपने हाथ में ले लेना चाहिए। हिन्दुत्ववादी संगठनों ने इस सवाल को संविधान का अनुच्छेद 370 रद्द कर दिया जाए इस तरह की मांग की है और उन्होंने अपनी मुस्लिम विरोधी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। भारत के विदेश मंत्री ने इस सवाल के संदर्भ में किसी की भी मध्यस्थता नहीं चाहिए, इस बात को बड़े प्रभावी ढंग से कहा है। इस तरह यहाँ कुछ मुख्य समाधानों की चर्चा की गई है। इन भूमिकाओं पर विचार किया जाए तो उनमें यही दिखाई देता है कि कश्मीर का प्रश्न हल करने की बजाय

अपने-अपने हित सम्बन्धों का ही ज्यादा ध्यान रखा गया है। कोई भी रास्ता स्पष्ट नहीं होने के कारण कश्मीर का सवाल दिन-ब-दिन बहुत ही उलझता दिखाई दे रहा है। इस सवाल के इर्द-गिर्द राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और जातिवादी प्रवृत्तियों का जो जाल फैला हुआ है, उसके कारण वह सवाल और भी उलझता जा रहा है।

कश्मीर सवाल के प्रतिकूल परिणाम

कश्मीर का सवाल बहुत ज्यादा राजनीतिक उलझन का होने के कारण भारत और पाकिस्तान इन दोनों राष्ट्रों का बेहद नुकसान हो रहा है। इसीलिए पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को ऐसा लगता हो कि कश्मीर का सवाल हल हो जाए। वे कहते हैं कि, 'मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान के मुसलमान कश्मीर का मसला हल हो जाने से खुश होंगे और दोनों मुल्क (भारत-पाक) अच्छे पड़ोसी की तरह रहना शुरु कर देंगे।' ('माया' : 30 सितम्बर, 92, पृ. 20)

पिछले 45 सालों से भारत और पाकिस्तान इन दोनों राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल परिणाम पड़ रहा है। पाकिस्तान का 30 प्रतिशत और भारत का 18 प्रतिशत खर्च केवल सुरक्षा के नाम पर हो रहा है। यदि कश्मीर का सवाल ही नहीं होता तो इस खर्च में कटौती कर उसका उपयोग कल्याणकारी योजना पर किया जा सकता था। फिलहाल जम्मू-कश्मीर तो आतंकवादियों की युद्धभूमि ही है। इस सम्बन्ध में सरकारी आंकड़े स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं। केवल छह महीने में (1993) 2223 सशस्त्र हमले और 404 लोगों की हत्याएँ हुई हैं। सन् 1986 में 122 सशस्त्र हमले और 224 लोगों की हत्याएँ हुई हैं। सन 1990 में 1583 सशस्त्र हमले और 586 लोगों की हत्याएँ हुई हैं। सन 1991 में 2320 सशस्त्र हमले और 511 लोगों की हत्याएँ हुई हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कश्मीर की स्थिति दिन-ब-दिन कितनी भयंकर हो रही है। गुप्तचर विभाग के सूत्रों से इस बात का पता चला है कि वहाँ के आतंकवादियों के पास 16000 ए.के. 47 रायफल और 56 बन्दूकें, 1100 यु.एम.जी और आर.एम.जी., 45000 पिस्तौल, 150 टेलिस्कोपिक बन्दूकें और रिमोट कन्ट्रोल के द्वारा ध्वस्त कर देनेवाली विस्फोटक सामग्री हैं। कश्मीर घाटी में पिछले तीन साल के दरम्यान हुए भयंकर हिंसाचार में 5332 लोगों की हत्याएँ हुई। इसमें 2214 हथियारबंद आतंकवादी भी शामिल हैं।

राज्य सरकार द्वारा दी गई जानकारी के मुताबिक आतंकवादी टोली के आपसी बैर के कारण, उसी प्रकार सुरक्षा दलों के साथ हुए मुठभेड़ में 2214 आतंकवादी मारे गए हैं। पिछले 31 मार्च तक (1991) आतंकवादियों के किए गए बेहिसाब हिंसाचार में 1978 नागरिकों की हत्याएँ हुईं। उसमें 501 सुरक्षा रक्षक भी हैं। पाक प्रशिक्षित

आतंकवादियों ने 1988 से कश्मीर घाटी में 5800 विस्फोट और खूनखराबा करवाया है। उसमें से अधिकांश घटनाएँ लोगों की भीड़वाले इलाकों में घटी हैं। आतंकवादियों ने तीन साल में सुरक्षा दलों पर 6248 बार हमले किए हैं। उसी प्रकार आतंकवादी और सुरक्षा रक्षक इनमें हुई मुठभेड़ में 1940 बेगुनाह नागरिक मारे गए हैं। इस तरह की जानकारी राज्य सरकार की ओर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका में दी गई है। ('लोकसत्ता', नागपुर, 15 मार्च 1993) इस तरह की स्थिति में कश्मीर में लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव कैसे किया जा सकता? और कश्मीर में शांति कायम करने के लिए किस प्रकार की मंत्रणा अमल में लाई जा सकती है?

कुछ समाधानों का परामर्श

कश्मीर की स्थिति नियंत्रित करने के लिए भारत सरकार ने दो विधेयक बनवाए हैं। एक विधेयक के द्वारा 3 सितम्बर, 1992 में समाप्त होने वाले राष्ट्रपति शासन का कार्यकाल छह माह के लिए बढ़ाया गया है और दूसरे विधेयक के द्वारा जम्मू-कश्मीर के वैधानिक शक्ति के अधिकार राष्ट्रपति को सौंप दिए गए हैं। उसके बाद की स्थिति यह है कि कश्मीर की स्थिति को नियंत्रित करने के लिए भारत सरकार ने जनरल मेजर के. व्ही. कृष्णराव को जम्मू-कश्मीर का राज्यपाल नियुक्त किया है।

राज्यपाल के राजनीतिक सलाहकार के रूप में पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. फारूख अब्दुल्ला के नाम का प्रस्ताव भारत के प्रधानमंत्री ने रखा (1993)। उस समय डॉ. अब्दुल्ला ने उस प्रस्ताव को नकारा। जम्मू-कश्मीर में नई राजनीतिक प्रक्रिया शुरु करने के केंद्रीय सरकार के प्रयासों को अपना पूरा समर्थन रहेगा, इस तरह डॉ. अब्दुल्ला ने कहा भी था। उन्होंने कहा था कि, फिर भी राज्यपाल के सलाहकार के रूप में रहने के बजाय चुनाव के माध्यम से सत्ता हासिल कर अधिकार प्राप्त करना मुझे ज्यादा पसंद आएगा, उन्होंने यह भी कहा कि, केवल राज्यपाल का तबादला कर इस सवाल को हल नहीं किया जा सकता। इसलिए राज्य को ही ज्यादा अधिकार मिलने चाहिए।

1952 के समझौते के मुताबिक यह तय हुआ था कि, कश्मीर का स्वतंत्र संविधान और राष्ट्रध्वज रहेगा। उसी प्रकार राज्यपाल को सदर-ए-रियासत और मुख्यमंत्री को वजीर-ए-आजम (प्रधानमंत्री) कहा जाएगा। केंद्र सरकार ने कश्मीर को ज्यादा स्वतंत्रता देने की बात मंजूर कर ली है। इस तरह की बात डॉ. अब्दुल्ला के नजदीकी सूत्रों ने बताई है। ('तरुण भारत', नागपुर, 16 मार्च, 1993)

कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. फारुख अब्दुल्ला द्वारा व्यक्त किए गए विचार मौजूदा स्थिति में उतने समर्थनीय नहीं हो सकते; क्योंकि राज्यपाल नियुक्ति के सम्बन्ध में उनके विचार भारत सरकार ने स्वीकार कर लिए हैं। किन्तु डॉ. फारुख अब्दुल्ला

प्रत्यक्ष में राज्यपाल को सहयोग करने के लिए तैयार नहीं हैं। ऐसा दिखाई दे रहा है कि, उनको कश्मीर के सवाल की बजाय स्वयं के लिए मुख्यमंत्री पद की ज्यादा चिंता लगी हुई है। जो नेता व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित हैं, वे कश्मीर का सवाल कैसे हल कर पाएँगे यही एक महत्वपूर्ण सवाल है। साम्प्रदायिकता का समर्थन करने वाली भाजपा जैसी राजनीतिक पार्टी पूर्व राज्यपाल डॉ. जगमोहन के कार्यों का समर्थन कर मौजूदा राज्यपाल के साहस को कमजोर करने का प्रयास कर रही है। इस प्रकार की स्थिति में भी वर्तमान राज्यपाल ने सख्त कदम उठाने के लिए अपनी योजना तैयार की है। वे राज्य की जनता को सम्बोधित करते हुए अपने संदेश में कहते हैं कि, 'कश्मीरी घाटी के युवाओं ने हिंसाचार जैसा गलत रास्ता त्याग दिया तो उनके पुनर्वास के लिए सरकार हर तरह की मदद करेगी। इस तरह का आश्वासन उन्होंने दिया है।' ('लोकसत्ता', नागपुर-15 मार्च 1993)

यह जम्मू-कश्मीर का संवैधानिक पक्ष है, फिर भी ऐसा नहीं लगता कि उसे कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए विशेष सहायता मिलेगी। जब तक इन दोनों धार्मिक समुदायों को धर्मनिरपेक्षता के आधार पर एक सूत्र में बाँधा नहीं जाता, तब तक कश्मीर की समस्या हल होना कदापि सम्भव नहीं है। भाजपा नेताओं ने सरकारी विमान से श्रीनगर में जाकर राष्ट्रीय झंडा फहराया और हिन्दू राष्ट्र निर्मिती का सपना साकार करने के उद्देश्य से संविधान के 370 अनुच्छेद को रद्द करने की माँग भी की थी, किन्तु उससे कुछ भी हासिल होनेवाला नहीं है। बल्कि इससे हिन्दू और मुस्लिम के बीच खाई और चौड़ी करने में मदद मिलेगी। इस बात को और नजरअन्दाज करने से काम नहीं चलेगा।

इस तरह की स्थिति में अमेरिका द्वारा सुझाया गया प्रस्ताव कश्मीर के सवाल को हल करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण लगता है। इस प्रस्ताव में कश्मीर का विभाजन निश्चित ही मान लिया गया है। इसलिए भारत और पाकिस्तान इन दोनों राष्ट्रों ने इस प्रस्ताव पर सकारात्मक और सद्भावपूर्ण विचार करके फैसला करना ही दोनों राष्ट्रों के लिए उपयुक्त होगा। अखंड जम्मू-कश्मीर का सपना देखना भारत के लिए खतरे से खाली नहीं है। भारत इस काल्पनिक अखण्डता के नाम पर करोड़ों रुपया सुरक्षा पर खर्च कर रहा है और भारत को पिछले कुछ साल से उसके आर्थिक प्रतिकूल परिणाम भोगने पड़ रहे हैं।

डॉ. अम्बेडकर के सुझावों पर गौर किया जाए

कश्मीर के विभाजन का विचार अमेरिका ने सुझाया है। इसलिए उसकी ओर केवल सन्देह की निगाहों से देखने का कोई मतलब नहीं है। यह विचार कोई नया नहीं

है। 1951 में भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने इसी प्रकार का सुझाव रखा था। उन्होंने कहा था कि 'कश्मीर का विभाजन करके बहुसंख्यक मुस्लिम प्रजा की आम राय लेकर उस प्रदेश को पाकिस्तान को दिया जाए और गैर-मुस्लिम प्रदेश (जम्मू और लद्दाख) भारत को जोड़ा जाए। इससे दो राष्ट्रों के बीच एकता स्थापित करने के लिए अच्छा अवसर प्राप्त होगा।' डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों की ओर उस समय यदि ध्यान दिया गया होता तो आज कश्मीर का सवाल अस्तित्व में ही नहीं होता। और पाकिस्तान को भी भारत के खिलाफ षड्यंत्र करने के लिए कोई कारण ही बचा नहीं होता। मौजूदा स्थिति में जम्मू-कश्मीर का कुछ भाग पाकिस्तान के, तो कुछ भाग चीन के और कुछ भाग भारत के नियंत्रण में है। इस सवाल का हल खोजने के लिए यू.एन.ओ. साहस जुटा नहीं पा रहा है। जम्मू-कश्मीर के नेता कश्मीर की स्वतंत्रता माँगते हुए 1952 साल की राजनीति अब करना चाहते हैं। वहाँ के उग्रवादियों की हरकतों में हर तरह की सीमा पार कर ली हैं। ऐसे समय भारत ने जम्मू-कश्मीर के विभाजन का ठोस विचार करना चाहिए। अखंड भारत का सपना देखनेवाले सभी नेताओं को डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा लिखित 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' ग्रन्थ के आधार पर भारत का विभाजन करना पड़ा। उसी विभाजन का अंतिम हिस्सा कश्मीर का विभाजन साबित होगा। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने जम्मू-कश्मीर के विभाजन के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं, वे इस सवाल को हल करने का कितना भी प्रयास किया जाए, तब भी उससे कश्मीर का सवाल हल नहीं होगा, बल्कि भारत-पाकिस्तान के प्रत्यक्ष-परोक्ष युद्ध से विनाश ही होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मेजर जनरल के. व्ही. कृष्णराव ने जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल पद के सूत्र अपने हाथ में लिए हैं। उनको जिस तरह कश्मीर की भौगोलिकता तथा राजनीतिक जानकारी है, उसी प्रकार कश्मीर के आतंकवादियों को नियंत्रित करने की शक्ति भी उनके पास है। वे दुश्मनों के साथ मुकाबला करके उन पर विजय हासिल करने में काफी अनुभवी हैं। के. व्ही. कृष्णराव भारत के सैनिक इतिहास को गौरवान्वित करने वाले 'महार बटालियन' के दूसरे कर्नल लेफ्टिनेंट थे। जिस महार बटालियन ने दूसरे विश्वयुद्ध में पठाणी हमलावरों से और अन्य अफगानों से भारत की वायव्य सरहद की रक्षा की, भारत के विभाजन के पहले सवालाख मुस्लिमों को नवनिर्मित पाकिस्तान की सरहद तक बगैर किसी अवरोध के पहुँचाने का कार्य किया, जिस महार बटालियन ने क्वेट्टा शहर में मुस्लिम दंगलखोरों को नियंत्रित किया, बलूचिस्तान के हिंदू, सिख और अन्य गैरमुस्लिमों को भारत में सही सलामत लाया, इस तरह की बहादुरी का साहस दिखानेवाले महार बटालियन के मेजर जनरल के. व्ही. कृष्णराव ने अपना

कार्यकाल अपने गुणों से और साहस से अमर किया है। महार बटालियन ने बंग्लादेश, पंजाब, कश्मीर और अन्य युद्धों में जो साहस का परिचय दिया, उसके बारे में मेजर जनरल के. व्ही. कृष्णराव ने विशिष्ट सेवा पदक जैसा उच्चतम सैनिक सम्मान प्राप्त किया है। (सन्दर्भ : मराठी विश्वकोष, खण्ड 12, पृ. 1463)

फिर भी सवाल यह है कि जम्मू-कश्मीर के आतंकवादियों पर की गई कार्रवाई को रोका गया तो क्या कश्मीर की स्थिति नियंत्रण में आ सकेगी? कश्मीर का सही सवाल केवल आतंकवादियों पर कार्रवाई का नहीं है, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम मानसिकता का है। इसी मानसिकता से आतंकवादियों का जन्म हुआ है। आतंकवादियों का समर्पण या उनका सफाया करने का मतलब कश्मीर का सवाल हल करना नहीं है। यह केवल तात्कालिक समाधान होगा। यदि कश्मीर का सवाल हमेशा-हमेशा के लिए हल करना हो तो डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा सुझाया गया रास्ता ही मार्गदर्शक हो सकता है।

1. "A person with an open mind is always the subject of congratulations. While this may be so, it must, at the same time, be realized that an open mind may also be an empty mind and that such an open mind, if it is a happy condition, is also a very dangerous condition for a man to be in." (28th Dec. 1940)

(Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, Vol. 8, P. 18)

संदर्भ साहित्य

मराठी

1. काश्मीर ते कन्याकुमारीपर्यंतच्या करुण किंकाळया : शंकरराव सुरडकर/विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर।
2. भारताचे संविधान-भारत सरकार।
3. भीमराव रामजी आंबेडकर, चरित्र खंड 9 : चां. भ. खैरमोडे। (म. रा. साहित्य सं. मं. मुंबई)
4. भीमराव रामजी आंबेडकर चरित्र खंड 10 : चां. भ. खैरमोडे। (म. रा. साहित्य सं. मं. मुंबई)
5. भीमराव रामजी आंबेडकर चरित्र खंड 11 : चां. भ. खैरमोडे। (म. रा. साहित्य सं. मं. मुंबई)
6. भूमिका : यशवंतराव चव्हाण-प्रेस्टिज प्रकाशन, पुणे।
7. मराठी विश्वकोष, खंड-10-मराठी विश्वकोष, मुंबई।
8. महात्मा फुले गौरव ग्रंथ-म. रा. शिक्षण विभाग मंत्रालय, मुंबई।
9. महात्मा फुले समग्र वाङ्मय, संपादक य. दि. फडके-म. रा. साहित्य सं. मंडल, मुंबई।
10. सरदार वल्लभभाई पटेल : प्रभाकर वैद्य।

हिन्दी

1. नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 पर वर्ष 1986 की वार्षिक रिपोर्ट-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. डॉ. बी. आर. आंबेडकर का राजनीति दर्शन : डॉ. डी. आर. जाटव-समता साहित्य सदन, जयपुर।
3. महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, संपा. डॉ. विमलकीर्ति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

अंग्रेजी

1. Atrocities on Scheduled Castes & Tribes : Causes & Remedies (Report of National Commission for Scheduled Caste & Scheduled Tribes, Govt. of India, April, 1990.
2. Constituent Assembly Debates, Vol. X (6.10.1949 To 17.10.1949)
3. Dr. Babasaheb Ambedkar Writings & Speeches, Vol. 2, Govt. of Maharashtra.
4. Pakistan or the partition of India : Dr. B.R. Ambedkar Dr. Babasaheb Ambedkar Writings & Speeches Vol. 8, Govt of Maharashtra.
5. Pandit Jawaharlal Nehru, A Biography Vol. II 1947-1956 : Sarvapalli Gopal. Oxford University press, Delhi.
6. States & Minorities : Dr. B.R. Ambedkar (Dr. Babasaheb Ambedkar Writings & Speeches Vol. 1, Govt. of Maharashtra.
7. The first Indian war of Independence : Karl Marx, EngelsèProgress publishers, Moscow.
8. The Kashmir Question : A.G. Noorani/Mahaktalas, Bombay.
9. The Regimental history of the Mahar M.G. Regiment : Thorat, S.P.P.
10. What Congress and Gandhi have done to the untouchables : Dr. B.R. Ambedkar-Tacker & Co., Ltd., Bombay.

समाचार पत्र

1. तरुण भारत, नागपुर (18-3-1992, 14-3-92, 16-3-92)
2. नवशक्ति, मुंबई (24-11-51, 25-11-51, 14-10-51)
3. प्रबुद्ध भारत, मुंबई (20-1-62, 6-9-58)
4. भीमशक्ति, नागपुर (29-8-65, 5-9-65)
5. माया (हिन्दी) (20 सितम्बर, 1992)
6. लोकमत (दे.), नागपुर (26-1-1993)
7. लोकसत्ता (दे.), नागपुर (15 मार्च 1993)
8. Economic and political weekly (Dec. 21, 1991)
9. Times of India (26.10.52, 10.11.51)
10. The Hitavada, Nagpur (1 Oct. 1989)

धनराज डाहाट

प्रकाशित पुस्तकें

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के नामांतरण का प्रश्न, प्रमेय प्रकाशन, मूल्य 4 रुपए। **फुले अम्बेडकर के आंदोलन की दिशा,** डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर स्टडी सर्कल, दर्यापुर, मूल्य 3 रुपए। बामसेफ का धोरवाधड़ी अभियान, प्रमेय प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 3 रुपए। **फुले-अम्बेडकर आन्दोलन,** प्रमेय प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 18 रुपए। **बोधीपुरुष चक्रधर,** संकेत प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 4 रुपए। **शताब्दी,** संकेत प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 30 रुपए। **धम्मनायिका,** संकेत प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 30 रुपए। **कबीर : व्यक्तित्व और विचार,** संकेत प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 60 रुपए। **बाविस प्रतिज्ञाएँ,** संकेत प्रकाशन, नागपुर, मूल्य 60 रुपए।

पुरस्कार

प्रथम पुरस्कार, निबंध स्पर्धा, किर्लोस्कर मासिक, पुणे (1980) प्रथम पुरस्कार, कथा स्पर्धा, सामाजिक समता परिषद, मुंबई (1975)। **प्रथम पुरस्कार, निबंध स्पर्धा,** अ. भा. विद्यार्थी परिषद (1972)। **उत्कृष्ट काव्य पुरस्कार,** डेक्कन बुद्धिस्ट सोसायटी, नागपुर (1990)। **भारत-रत्न डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर साहित्य पुरस्कार,** पंचशील तरुण मंडल, पिंपरी, जि. सोलापुर (1991)। **मान चिन्ह व सत्कार,** महात्मा फुले व डॉ. अम्बेडकर जन्म शताब्दी समारोह समिति, चंद्रपुर (1991)। **महानुभाव साहित्य पुरस्कार,** अ. भा. महानुभाव महामंडल, पुणे (1992)। **महानुभाव ग्रन्थोत्तेजक पुरस्कार,** महानुभाव विश्वभारती, अमरावती (1992)।

संपादन

धम्मचक्र प्रवर्तन दिन विशेषांक, **साप्ताहिक जयभीम,** नागपुर (1984-85) **भीमज्योत विशेषांक,** भीमज्योत कर्मचारी समिति, नागपुर (1989 से 1991) स्मरणिका, नगर नागसेन स्पोर्टिंग क्लब, नागपुर (1991)।

आगामी पुस्तक

डॉ. अम्बेडकर और समाजवाद

धनराज डाहाट

''जहां तक 'डॉ. आम्बेडकर आणि काश्मीर समस्या' को हिंन्दी में अनुवाद करने की बात है इस बारे में पिछले दो वर्षों से मन में इच्छा थी। धनराज डाहाट जी ने इस विषय पर जो मेहनत की थी उसे हिंदी के पाठकों को परिचित कराने की जिम्मेदारी भी मैं महसूस कर रहा था।

इस अनुवाद के पीछे एक बड़ा कारण और था और वह यह कि जब-जब भी उत्तर भारत विशेषतौर पर देश की राजधानी से प्रकाशित समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कश्मीर समस्या पर बुद्धिजीवियों के बीच बहस छिड़ती थी तो वे बाबा साहेब के कश्मीर समस्या पर दिये गये विचार तथा वक्तव्यों को नजरअंदाज करते रहे थे। इसके दो विशेष कारण रहे। पहला संपादक तथा पत्रकारों को बाबा साहेब के कश्मीर समस्या से संबंधित विचारों के बारे में जानकारी भी नहीं थी। दूसरे वैसे बुद्धिजीवी सवर्ण मानसिकता से प्रभावित भी रहे हैं। इसलिए बाबा साहेब के विचार को राष्ट्रीय हित हेतु ध्यान में रखते हुए तथा कश्मीर समस्या और उसके समाधान के लिए सुझाए गये रास्तों से समूचे हिंदी पाठकों को परिचित कराने के लिए मैंने इसके अनुवाद का कार्य किया।''

मोहनदास नैमिशराय

गौतम बुक सेन्टर
प्रकाशक एंव वितरक
C-263 A, ''चन्दन सदन''
हरदेवपुरी, शाहदरा,
दिल्ली-110093
फोन : 22810380, 9810173667

ISBN : 978-81-87733-76-8
9 788187 733768